राष्ट्रीय छात्रशक्ति

वर्ष 34 अंक 1 अप्रैल 2012 नई दिल्ली मूल्य 5 रु. पृष्ठ 28

चिदंबरम् इस्तीफा दो...

अंग्रेजी की भेंट चढ़ती ग्रामीण प्रतिभा

जम्मू-कश्मीर में शहीद दिवस पर रक्तदान करते अभाविप कार्यकर्ता

राजधानी में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम में प्रस्तुति देते छात्र

राष्ट्रीय छात्रशक्ति

शिक्षा क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

संपादक

आशुतोष

संपादक मण्डल

अवनीश सिंह
संजीव कुमार सिन्हा

फोन : 011-43098248
ई-मेल : chhatrashakti.abvp@gmail.com
ब्लॉग : chhatrashaktiabvp.blogspot.com
वेबसाईट : www.abvp.org

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के लिए राजकुमार शर्मा द्वारा बी–50, विद्यार्थी सदन, किश्चियन कॉलोनी, निकट पटेल चेस्ट इंस्टीट्यूट, दिल्ली – 110007 से प्रकाशित एवं मॉडर्न प्रिन्टर्स, के–30, नवीन शाहदरा, दिल्ली – 110032 द्वारा मुद्रित।

संपादकीय कार्यालय

''छात्रशक्ति भवन''
690, भूतल, गली नं. 21
फैज रोड, करोलबाग,
नई दिल्ली - 110005

अनुक्रमणिका

विषय	पृ. सं.
संपादकीय	4
चिदंबरम् इस्तीफा दो	5
साक्षरता अभियानों की मृग–मरीचिका (पंकज चतुर्वेदी)	7
अभाविप ने लगाया रक्तदान शिविर	9
अभाविप का छात्रावास सर्वे अभियान	10
अंग्रेजी की भेंट चढ़ती ग्रामीण प्रतिभा (अभिषेक रंजन)	11
एबीवीपी की भूख हडताल के आगे झुका प्रशासन	14
गिलगित को तिब्बत बनाने का षड्यंत्र (जवाहर कौल)	15
कृषि आधारित कार्यशाला संपन्न	17
गरीबी की नई परिभाषा (रविशंकर)	18
अपरिभाषित सेक्यूलरिज्म के जलवे (शंकर शरण)	21
ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया (आशुतोष)	24

वैधानिक सूचना

राष्ट्रीय छात्रशक्ति में प्रकाशित लेख एवं विचार तथा रचनाओं में व्यक्त दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं। संपादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। समस्त प्रकार के विवादों का न्यायिक क्षेत्र दिल्ली है।

संपादकीय..

भीमराव आम्बेडकर को जानने बूझने के लिए दो–तीन बातों का ध्यान रखना जरूरी है। सबसे पहले तो उनके कथ्य को उसी समग्रता में तभी समझा जा सकता है यदि समझने वाला स्वयं को आम्बेडकर की सामाजिक स्थिति पर अवस्थित कर सके। यह कहना जितना आसान है करना उतना ही कठिन। ''जाके पाव ना फटी बिवाई सो क्या जाने पीर पराई''। परंतु पराई पीर को समझने के लिए कितने लोग हैं जो अपनी बिवाई में से खून निकालना शुरू कर देते हैं? यही कारण है कि कुछ लोग तो आम्बेडकर को पढ़कर नथुने फुलाने लगते हैं और दूसरे उनके लेखन को यथार्थ से परे बताते हैं। बौद्धिक स्तर पर आम्बेडकर के लेखन का अध्ययन तो हो सकता है लेकिन उसके भीतर की वेदना की अनुभूति नहीं। आम्बेडकर के भीतर तक पहुंचने के लिए इस अनुभूति की ही सबसे ज्यादा जरूरत है।

आम्बेडकर चिंतन की दूसरी सबसे बड़ी विशेषता उसकी गतिशीलता है। वे जीवन यात्रा के किसी मोड़ पर जड़ और गतिहीन नहीं हुए। जयप्रकाश नारायण की भांति वे भी ज्यों–ज्यों आगे बढ़ते गए त्यों–त्यों अपने चिंतन में अनेक स्थानों पर परिवर्तन भी करते गए। गतिशील चरित्र ही अन्ततः सत्य के ज्यादा समीप पहुंच पाता है। एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए, आम्बेडकर भूतकाल के केवल एक हिस्से को पकड़ कर क्रोध की अभिव्यक्ति नहीं करते रहे बल्कि वे तो विषमता के कारणों को समझकर, उन्हें दूर करके, समरस समाज की चिंता करने वालों में से थे। उनका दर्द हिन्दू समाज के भीतर दिखाई दे रही उन दरारों और खाईयों को लेकर था जो मानव और मानव के बीच भेद करती हैं। शायद यही कारण था कि वे बार–बार इन दरारों को भरने के लिए हिन्दू समाज के सवर्ण लोगों से अपील कर रहे थे। उनका संपूर्ण चिंतन समाज के भीतरी आदमी का दर्द है। यह दर्द उस व्यक्ति का है जो स्वयं को इस समाज का ही अंग मानता था। स्मृतियों में अनेक स्थानों पर समाज की व्यवस्था को लेकर जो सूत्र दिये हुए हैं, वे अनेक स्थानों पर अतार्किक दिखाई दे रहे हैं। इसलिए आम्बेडकर ने उन सूत्रों को चुनौती दी। मनु स्मृति को लेकर उनके विचारों को इसी परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। लेकिन भीमराव ये भी जानते थे कि स्मृतियां स्थाई नहीं होतीं। उनमें युगानुकूल परिवर्तन होते रहते हैं। नए भारत के लिए नई स्मृति अथवा संहिता लिपिबद्ध करने का कार्य उन्होंने स्वयं किया। भारतीय संविधान उनकी इसी रचना का फल है।

बाबा साहब आम्बेडकर स्वर्गवास से कुछ दिन पहले बुद्ध की शरण में चले गए। बहुत से लोगों को आशा थी कि वे हजरत मोहम्मद या ईसा मसीह की शरण में चले जाएंगे। लेकिन आम्बेडकर पहले ही घोषणा कर चुके थे कि यदि मेरे हितों और राष्ट्रहित में टकराव होगा तो मैं राष्ट्रहित को ही प्राथमिकता दूंगा। यही कारण था कि उन्होंने भगवान बुद्ध की शरण में जाते हुए कहा था कि तथागत तो भारतीय सांस्कृतिक प्रवाह का अभिन्न अंग हैं। इसलिए मेरी इस नई साधना से भारतीय सांस्कृतिक प्रवाह सुदृढ़ ही होगा। आम्बेडकर समरसता के अग्रदूत थे। कोलंबिया विश्वविद्यालय में शोध के लिए प्रस्तुत लघु प्रबंध में उन्होंने स्पष्ट किया था कि जाति विभेद के बावजूद भी संपूर्ण भारतीय समाज में एक सुदृढ़ आंतरिक एकता परिलक्षित होती है। गोरे विद्वान जिस आर्य और द्रविड के भेदों की जहां तलाश कर रहे हैं वह कहीं विद्यमान नहीं है। दरअसल आम्बेडकर जिस समरसता की लड़ाई लड़ रहे थे वह पूरे हिन्दू समाज की लड़ाई है। आम्बेडकर भारतीय समाज के राजरोग का ईलाज ढूंढ रहे थे। हिन्दु समाज के स्वास्थ्य के लिए नए रास्तों की तलाश कर रहे थे। यह हर्ष का विषय है कि भारतीय समाज पिछले छः दशकों में आम्बेडकर के दिखाए रास्तों पर बहुत दूर तक आगे बढ़ चुका है।

आम्बेडकर की मूल चिंता दलित समाज के प्रति स्वर्णजातियों में व्याप्त अस्पृश्यता को लेकर थी। भीमराव ने बहुत परिश्रम करके जातिप्रथा और छूवाछूत के कारण ढूंढने का प्रयास किया। कुछ स्थानों पर वे इस निर्णय पर पहुंचे दिखाई देते हैं जिन लोगों को आज शूद्र या दलित कहा जाता है, उनका दर्जा पहले उस प्रकार का नहीं था। कालांतर में अनेक कारणों से उनका इस प्रकार बहिष्कार किया गया। आम्बेडकर की सबसे बड़ी खूबी यह है कि उनकी विद्वता में दंभ दिखाई नहीं देता। वे बार–बार यह चेतावनी देते जाते हैं कि मेरे निष्कर्षों को अंतिम न मान लिया जाए। बहुत से विद्वान आम्बेडकर के आरोपों का उत्तर किताबों के आधार पर देने की कोशिश करते हैं। वे प्राचीन ग्रंथों से ऐसे उदाहरण निकालते हैं जिनमें मनुष्य मात्र की समानता की घोषणा की गई है। परंतु आम्बेडकर जानते थे कि जीवन किताब से नहीं चलता बल्कि उसे तो धरातल के यथार्थ का सामना करना पड़ता है और हिन्दु समाज में धरातल पर अस्पृश्यता रही है, इस से कौन इंकार कर सकता है। श्रुति और स्मृति में यही अंतर है। श्रुति को लेकर बहुधा विवाद नहीं होता। विवाद स्मृतियों को लेकर ही होता है। यह प्रसन्नता का विषय है कि हिन्दु समाज में बाबा साहब की धारणा के अनुरूप ही काल प्रवाह में अप्रासंगिक हो गई स्मृतियों का शोध महत्व ही स्वीकार किया गया है, व्यवहारिक महत्व नहीं। भारतीय समाज में वर्तमान में यह स्थान–स्थान पर यह परिलक्षित हो रहा है। लेकिन इस दिशा में अभी कितना कुछ किया जाना बाकी है।

चिदंबरम् इस्तीफा दो ...

नई दिल्ली, 12 मार्च। भ्रष्टाचार के विरूद्ध अपने संघर्ष को तेज करते हुए 'यूथ अगेंस्ट करप्शन' व 'अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद' ने संसद के समक्ष राष्ट्रव्यापी प्रदर्शन किया। टूजी स्पेक्ट्रम मामले में गृह मंत्री पी. चिदंबरम् को सह अभियुक्त बनाने, एनजीओ व निजी क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार रोकने के लिए सख्त कानून बनाने और विदेशों में जमा काला धन वापस लाने की मांग को लेकर आयोजित इस प्रदर्शन में दिल्ली व आसपास के राज्यों से आये हजारों छात्र–युवाओं ने भाग लिया।

प्रदर्शनकारी छात्र दीनदयाल उपाध्याय मार्ग पर इकट्ठा होकर जंतर–मंतर की ओर चिदंबरम् इस्तीफा दो, विदेशों में पड़ा काला धन वापिस लाओ के नारे लगाते पहुंचे।

जंतर–मंतर पर आयोजित सभा को संबोधित करते हुए अभाविप के राष्ट्रीय महामंत्री उमेश दत्त ने कहा कि मा. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 122 टेलिकॉम लाईसेंसों को रद्द करने से यह साबित हो गया कि स्पेक्ट्रम आवंटन में भारी घोटाला हुआ है और इस घोटाले से हुई 1.76 हजार करोड़ की आर्थिक क्षति देश को सहनी पड़ी है। इतने बड़े घोटाले को बिना वित्तमंत्री की सहमति से अंजाम देना संभव नही था। फिर भी तत्कालीन वित्त मंत्री पी. चिदंबरम को दोषी मानने से इन्कार करते हुए केंद्र सरकार उन्हें बचाने का प्रयास कर रही है।

अभाविप पी. चिदंबरम को 2जी घोटाले में सह अभियुक्त बनाने व गृह मंत्री पद से बर्खास्त करने की मांग करती है। यूथ अगेंस्ट करप्शन के राष्ट्रीय संयोजक सुनील बंसल ने काले धन को देश में वापस लाने हेतु फ्लोटिंग वारंट के माध्यम से खाता धारकों की अविलम्ब जांच शुरू करने की मांग सरकार से की। राष्ट्रीय सह संयोजक विष्णुदत्त शर्मा ने देश में व्याप्त भ्रष्टाचार रोकने के लिए सख्त कानून बनाने की जरूरत बताते हुए कहा कि अनेक एनजीओ समाज सेवा व देश के विकास के नाम पर कार्य करने की बजाय घोर भ्रष्टाचार में लिप्त है। कभी–कभी ये सरकार के जनहित से सम्बधित निर्णयों को भी प्रभावित करते हैं।

सभा का संचालन दिल्ली प्रदेश मंत्री रोहित चहल ने किया। सभा के बाद प्रतिनिधि मंडल ने महामहिम राष्ट्रपति महोदया को अपनी मागों से सम्बंधित ज्ञापन भी सौंपा।

सभा के बाद एक बड़े जनसमूह में तब्दील होकर छात्र–युवाओं की रैली ने संसद भवन की ओर कूच किया। संसद के समक्ष प्रदर्शन के दौरान प्रदर्शनकारी छात्र व पुलिस के बीच हलकी झड़प हुई जिसमें कुछ कार्यकर्ता घायल भी हुए। अभाविप ने मांगो को न माने जाने पर आंदोलन को अधिक तीव्र बनाने का ऐलान भी किया है। आज के प्रदर्शन से यह साफ हो

गया है कि देश के युवा भ्रष्टाचार को बर्दाश्त करने के मूड में नही है और भ्रष्टाचार के खात्मे तक निर्णायक संघर्ष करने को तैयार हैं।

आज के प्रदर्शन में मुख्य रूप से अभाविप के राष्ट्रीय संगठन मंत्री सुनील आंबेकर, राष्ट्रीय मंत्री श्रीरंग कुलकर्णी तथा अनिल कुमार, वाईएसी की राष्ट्रीय सह संयोजिका डा. रश्मि सिंह समेत हजारों कार्यकर्ता शामिल थे।

राष्ट्रपति से यूथ अगेंस्ट करप्शन व अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद की मांग

पिछले 63 वर्षों से एक प्रभावशाली छात्र संगठन के रूप में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् शैक्षणिक क्षेत्र में सक्रिय है तथा अपनी रचनात्मक गतिविधियों के माध्यम से भारत को वैभवशाली बनाने के अपने लक्ष्य हेतु शिक्षा परिसरों में कार्य रही है। विद्यार्थी परिषद् ने देशहित से जुड़े प्रत्येक विषय को अपना कार्य समझ कर व युवाओं के अन्दर सकारात्मक शक्ति जाग्रत कर हमेशा देश के पुनर्निर्माण में हाथ बटाँने का काम किया है। इस साथ ही साथ देश की समस्याओं के समाधान में भी विद्यार्थी परिषद् ने अपनी भूमिका सुनिश्चित की है। महोदया, देश अभी भ्रष्टाचार की तपिष में झुलस रहा है। भ्रष्टाचार के विषय ने देश की वैश्विक पहचान को दागदार करने का काम किया है। भारत की प्रतिष्ठा आज दांव पर लगी हुई दिख रही है जिसको देश के महान पूर्वजों, वैज्ञानिकों, शिक्षाविदों, उद्योगपतियों, युवाओं ने बनाया है तथा जिसे देश के संस्कार और सभ्यता ने सींचने का काम किया है। देश में व्याप्त भ्रष्टाचार के खिलाफ देश का युवा अक्रोशित है और युवा–विद्यार्थियों की सामूहिक और सशक्त आवाज के रूप में विद्यार्थी परिषद् यूथ अगेंस्ट करप्शन के बैनर तले भ्रष्टाचार मिटाने के अपने संकल्प लिए लगातार संघर्ष छेड़े हुए है।

अभी हाल में मा. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 2जी घोटाले से सम्बंधित दिए गये फैसले से यह प्रमाणित हो गया है कि इतना बड़ा घोटाला बिना राजनीतिक संरक्षण के बिना संभव नहीं था। यह भी स्पष्ट हो गया है कि इस घोटाले में हुई 1.76 हजार करोड़ की राष्ट्रीय संपत्ति के नुकसान में तत्कालीन वित्त मंत्री की भी भूमिका संदेह के घेरे में है जिसकी जाँच भी चल रही है। तत्कालीन वित्त मंत्री पी. चिदंबरम के वर्तमान में गृह मंत्री रहते जाँच प्रक्रिया को प्रभावित करने की आशंका पूरे देश को है।

एक तरफ घोटालों से देश को आर्थिक नुकसान सहना पड़ा तो दूसरी तरफ विदेशो में काला धन भी भ्रष्ट लोगों के द्वारा काफी मात्रा में जमा किया हुआ है। अगर सरकार संवैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत फ्लोटिंग वारंट की प्रक्रिया अपनाते हुए काला धन देश में वापस लाये तो देश की विकास गति तीव्रता से आगे बढ़ेगी। देश में अ निजी क्षेत्रों व एनजीओ से सम्बंधित सख्त कानून की भी आवश्यकता महसूस की जा रही है। देश के विकास और समाज सेवा के नाम पर निजी क्षेत्रों व एनजीओ में बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार फैला हुआ है जिसकी वजह से समाज सेवा की जगह ये भ्रष्टाचार में लिप्त है और सरकार के जनहित सम्बन्धी निर्णयों को भी प्रभावित करने में लगे हुए है।

उपरोक्त विषयों को लेकर विद्यार्थी परिषद् ने प्रदर्शन किया तथा इनके समाधान के लिए विद्यार्थी परिषद् और यूथ अगेंस्ट करप्शन आप से तीन मांगे करती है :–

(1) गृह मंत्री को बर्खास्त किया जाये।

(2) काले धन को वापस लाने के लिए फ्लोटिंग वारंट की प्रक्रिया अपनाई जाये।

(3) निजी क्षेत्रों व एनजीओ में व्याप्त भ्रष्टाचार रोकने से सम्बंधित सख्त कानून बनाया जाये।

आशा है आप जनहित व देशहित के मद्देनजर हमारी उपरोक्त मांगों पर तुरंत कारवाई कर देश को भ्रष्टाचार मुक्त बनाने की दिशा में अपनी भूमिका निभायेंगी।

साक्षरता अभियानों की मृग-मरीचिका

• पंकज चतुर्वेदी

भारत में अभी भी बहुत से लोग साक्षर नहीं हैं। एक बार फिर से देश के कुछ सरकारी महकमे और संगठन प्रौढ़-शिक्षा को लेकर चिंतित दिखने लगे हैं। दुनिया के संपन्न देषों की दृष्टि भारत की निरक्षरता के लिए दयामयी हो गई है। वैश्विक नीति के तहत देश के बजट में साक्षर भारत नाम का एक नया शिगूफा जोड़ दिया गया है जो दावा करता है कि जल्दी ही देश की पूरी आबादी लिखने-पढ़ने लगेगी।

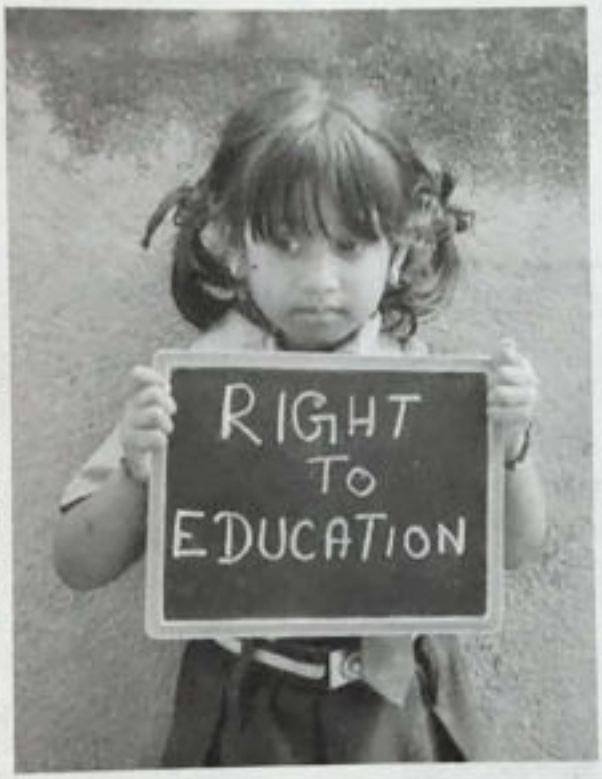

एक तरह से यह सच उजागर हो रहा है कि देश के सरकारी-प्राइमरी स्कूलों के बच्चे पांचवीं पास करने के बाद भी वर्णमाला तक ठीक से नहीं पहचान पाते हैं। दूसरे, 1988 को शुरू होकर कोई 20 साल तक चला संपूर्ण साक्षरता अभियान आंकड़ों में भले हरा-भरा दिखे लेकिन हकीकत में अपने लक्ष्य से बहुत पीछे रहा है।

आज शिक्षा के मामले में हमारी हालत त्रिशंकु जैसी है। हम कभी आंकड़े बढ़ाने पर उतारू हो जाते हैं तो कभी शिक्षा का स्तर पाने के लिए लालायित। कभी 15 साल से ऊपर के क्रियाशील निरक्षर हमारी प्राथमिकता बन जाते हैं तो कभी स्कूलों में इनरोलमेंट बढ़ाने की ओर बढ़ जाते हैं। इसी का नतीजा है कि हम साक्षरता के मामले में आधी छोड़ पूरी को धावे, आधी मिले ना पूरी पावे वाली लोकोक्ति चरितार्थ करते दिखते हैं।

8 सितम्बर 2009 को अंतर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस के अवसर पर प्रधानमंत्री ने साक्षर भारत अभियान का शुभारंभ किया था। जनगणना के ताजे आंकडे बताते हैं कि देश में अभी 15 साल से अधिक आयु के 25 करोड़ 95 लाख लोग निरक्षर हैं। इस अभियान में देश के कोई 365 जिलों में लोगों को साक्षर बनाने, पहले से साक्षरों को आगे पढ़ने के लिए प्रेरित करने का लक्ष्य है। इस बार महिला, अनुसूचित जाति, जनजाति और अल्पसंख्यकों की साक्षरता पर ज्यादा ध्यान देने का संकल्प लिया गया है। चालू पंचवर्षीय योजना के तीन सालों में इस पर 650270 करोड़ खर्च करने का प्रावधान है।

कई हजार करोड़ रुपए से 20 सालों तक चले संपूर्ण साक्षरता अभियान पर गौर करें तो राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के अंतर्गत इस अवधि में 597 जिलों में टीएलसी अर्थात संपूर्ण साक्षरता अभियान चला, जिसके तहत आईपीसीएल किट की तीन पुस्तकों के माध्यम से प्रौढ़ यानी 15 से 45 वर्ष के लोगों को साक्षर बनाया गया। फिर 485 जिलों में पीएलसी यानी उत्तर-साक्षरता अभियान चला। इसमें टीएलसी के माध्यम से साक्षर बने लोगों की आगे पढ़ाई का कार्य हुआ। देश के 328 जिलों में सतत शिक्षा परियोजना का संचालन भी हुआ।

टीएलसी और पीएलसी से उत्तीर्ण साक्षरों की सतत शिक्षा व उनकी पढ़ाई-लिखाई का उनके जीवकोपार्जन में प्रयोजन पर काम किया गया। सरकारी आंकड़ों पर भरोसा करें तो इस परियोजना के जरिए कोई 12 करोड़ 74 लाख लोग साक्षर बने जिसमें 60 फीसदी महिलाएं थीं। वैसे हाल की जनगणना ने साक्षरता अभियान के उन दावों की हवा निकाल दी है।

विडंबना ही है कि आजादी के बाद देश के भविष्य की कल्पना शुद्धतया शब्दों के मायाजाल और

फाइलों के मकड़जाल में उलझी रही। आम आदमी की जरूरतें, जन सुविधाएं यथावत कहीं दूर कराहती रहीं। सुनहरे कल की उम्मीद में कतरा–कतरा जीवन जी रहे लोगों को अब अक्षर–ज्ञान की मृग मरीचिका दिखाई जा रही है। सवाल है कि खेत में काम करने वाला, रिक्शा चलाने वाला गरीब अपनी रोजी छोड़ पढ़ना–लिखना क्यों और कैसे सीखे? जिन्हें जीने के लिए अपने श्रम का सहारा है, उनके लिए खाने–कमाने की उम्र में अक्षर ज्ञान का क्या महत्व होगा?

बीते एक दशक में केंद्र सरकार की जो भी भारीभरकम योजनाएं जैसे मनरेगा या एनएचआरएम आदि चली, वे केंद्र से राज्य और वहां से जिला और गांव जाते–जाते इतना घिस गईं कि हितग्राही तक उसका कोई लाभ पहुंचा ही नहीं। ऐसे में जब देश में रोटी, पानी, स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, मकान के लिए पैसे का टोटा है, तब मेहनत – मजदूरी करने वालों पर इस तरह का पैसा लगाना कितना कारगर होगा?

इस तरह के सवालों का उत्तर देने वाले साक्षरता समिति के अध्यक्ष बने जिला कलेक्टर के बयान, कतिपय ऐसे शिक्षक जो साक्षरता अभियान में डेपुटेशन पर हैं और कई जुनूनी स्वयंसेवक एक सा जवाब देंगे कि साक्षर होने पर व्यक्ति बस का नंबर पढ़ लेगा, राशन की दुकान पर हिसाब कर लेगा, अपने लिए बनी योजनाओं को समझ सकेगा, दस्तखत कर लेगा आदि–आदि।

लेकिन हाल में संपन्न चुनाव के दौरान मतदान–पत्र के काउंटर फाइल पर दर्ज अंगूठे के निशान गवाह हैं कि पूर्ण साक्षरता के दावे केवल कागजों तक ही सीमित हैं। वैसे भी इम्प्रूव्ड पेस ऑफ लर्निंग एंड कंटेंट यानी आईपीसीएल पद्धति से साक्षर बनाने की प्रक्रिया वर्ण को डीकोड करना नहीं सिखाती। इस तरीके में शिक्षार्थी शब्द को उसकी आकृति से पहचानता है। तभी तो एक नव साक्षर या प्रौढ़ शिक्षार्थी अपनी प्राइमर तो फटाफट पढ़ जाता है, लेकिन जब उसे वही शब्द किसी अन्य पुस्तक में दिखाए जाते हैं तो वह उन्हें मुश्किल से बांच पाता है।

गौरतलब है कि जिन दिनों विदेशी कंपनियों के लिए भारत की विशाल जनसंख्या यानी उपभोक्ताओं के दरवाजे खोल जा रहे थे, उसी समय कुछ अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों के कर्ज की मदद से देश में प्रौढ़ साक्षरता का नारा उछाला जा रहा था। जाहिर है कि अक्षर के प्रति जागरूकता का विस्तार करने के पीछे उन कंपनियों के निजी स्वार्थ रहे हैं। जितने ज्यादा लोग लिख–पढ़ सकेंगे, बिम्बों को पहचान सकेंगे, उतना ही उनके अखबार या टेलीविजन विज्ञापन को समझ सकेंगे और उपभोक्ता बनेंगे। देश में शिक्षा समाज की प्राथमिक जरूरतों में है, लेकिन इसके लिए जरूरी है कि सरकारी तंत्र अपना नजरिया और तरीका बदले।

हम स्तरहीन प्राथमिक विद्यालयों से पांचवी–आठवी पास ऐसे बच्चों की फौज निकाल रहे है जो पंद्रह साल की उम्र होने पर भी निरक्षर रहते हैं। काश साक्षर–भारत जैसी योजनाओं का बजट प्राथमिक स्कूलों की हालत सुधारने, छोटे बच्चों को गुणवत्तापरक शिक्षा देने में खर्च होता तो आने वाले सालों में प्रौढ़ शिक्षा जैसे अभियान चलाने की जरूरत ही न होती।

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद ने लगाया रक्तदान शिविर

काशी, 23 मार्च। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद और चिकित्सालय ब्लड बैंक के सहयोग से रक्तदान शिविर का आयोजन किया गया। इस शिविर के माध्यम से कुल 34 से अधिक लोगों ने रक्तदान किया। रक्तदान शिविर का उद्घाटन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के चिकित्सा अधीक्षक डॉ. यू. एस. द्विवेदी ने किया।

इस अवसर पर डा. यू. एस. द्विवेदी ने कहा कि आज के युग में रक्तदान ही महादान है इससे गरीबों की सेवा होती है। पहली बार सन् 1919 में रक्तदान की परम्परा की शुरूवात हुई थी। रक्तदान के माध्यम से अनेक लोगों के प्राण बचाये जा सकते हैं। रक्तदान से शरीर में किसी प्रकार का नुकसान नहीं होता है।

शिविर में देवेश ठाकुर, विजय प्रताप, चन्दनदास गुप्ता, नितेश कुमार सेठ, नवीन कुमार सिंह, आशुतोष पाण्डेय, योगेन्द्रनाथ पाण्डेय, अंकिता यादव, सन्नी सिंह, अजय कुमार, प्रिया सिंह, अंकित जायसवाल, नंदिता पाठक, आनंद सिंह, अपर्णा शर्मा, गौरीशंकर आदि ने रक्तदान किया।

आयोजित संगोष्ठी में सनातन धर्म इण्टर कालेज के प्रधानाचार्य डा. हरेन्द्र राय ने कहा कि चैत्र शुक्ल वर्ष प्रतिपदा के दिन रक्तदान बहुत पवित्र कार्य है। वर्ष प्रतिपदा से नये वर्ष का शुभारम्भ होता है। इस बार की वर्ष प्रतिपदा 23 मार्च सन 2012 ई. से युगाब्द 5114, विक्रमी संवत 2069 का प्रारम्भ है। उन्होंने कहा कि चैत्र शुक्ल वर्ष प्रतिपदा से नये वर्ष का प्रारम्भ ज्योतिषीय काल गणना के अनुसार वैज्ञानिक है। इस समय पूरे देश में विक्रमी संवत् सबसे अधिक व्यवहार में लाया जाता है। उज्जैन के सम्राट विक्रमादित्य ने शक आक्रमणकारियों को भारत से निकाल बाहर किया था। राष्ट्रीय गौरव के इसी प्रसंग को याद रखेने के लिए महाराजा विक्रमा दित्य के नाम से यह विक्रमी संवत् प्रारम्भ हुआ।

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के विभाग संगठन मंत्री विजय प्रताप ने कहा कि शहीद भगत सिंह, राजगुरु व सुखदेव के शहीदी दिवस के उपलक्ष्य में इस प्रकार का रक्तदान शिविर का आयोजन कर शहीदों को श्रद्धांजलि में दी गई। इस अवसर पर सेवा भारती के प्रान्त मंत्री विश्वनाथ वर्मा, सुधीर जी, अजित उपाध्याय, दीक्षा कला समिति के निदेशक चन्दन दा सहित अनेक लोग उपस्थित थे। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद काशी हिन्दू विश्वविद्यालय इकाई के अध्यक्ष श्यामजी सिंह ने कार्यक्रम का संचालन किया।

अभाविप का छात्रावास सर्वे अभियान

दुमका, झारखंड सरकार द्वारा संचालित जनजातीय छात्रावासों की समस्याओं को दूर करने की मांग को लेकर अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद द्वारा अक्टूबर माह में राज्यव्यापी आंदोलन किया जायेगा। इसके लिए परिषद द्वारा प्रथम चरण में अप्रैल माह में छात्रावास सर्वे अभियान चलाया जायेगा। अभियान की तैयारी को लेकर दुमका पहुंचे परिषद् के जनजातीय प्रमुख विक्रांत खंडेलवाल ने यह जानकारी दी है।

छात्रावास मामले में ३० अप्रैल को होगी अंतिम सुनवाई

इस मुद्दे पर कार्यकर्ताओं के साथ बैठक करने के बाद श्री खंडेलवाल ने परिषद की छात्रावास स्तर पर कमेटी गठन करने तथा जून महीने में जनजातीय छात्र–छात्राओं का एक राज्य स्तरीय व्यक्तित्व विकास शिविर आयोजित करने की भी जानकारी दी। श्री खंडेलवाल ने छात्रों के व्यक्तित्व व शिक्षा के विकास में परिषद की भूमिका पर भी प्रकाश डाला।

इस क्रम में उन्होंने परिषद की विशेष योजना के तहत कार्यरत विश्व विद्यार्थी युवा संगठन, थिंक–इंडिया और अंतरराज्यीय छात्र जीवन दर्शन से भी अवगत कराया। मौके पर परिषद के नगर मंत्री अवधेश कुमार मांझी, प्रदेश कार्यसमिति सदस्य मनोज हांसदा, मनमीत अकेला, रवि कुमार, बिमल मरांडी, दिनेश कापरी आदि भी उपस्थित थे।

जनजातीय प्रमुख श्री खंडेलवाल ने बताया कि विद्यार्थी परिषद द्वारा देश भर के छात्रावासों की समस्याओं को दूर करने तथा छात्रवृत्ति बढ़ाने की मांग को लेकर सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर की गयी है, जिसकी अंतिम सुनवाई 30 अप्रैल को होने वाली है। याचिका में 400 के स्थान पर न्यूनतम एक हजार रुपये छात्रवृत्ति के साथ तमाम सरकारी छात्रावासों में मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराने की मांग की गयी है।

कुलपति का पुतला फूंका

पिथौरागढ़। विश्वविद्यालय की परीक्षा तिथि बढ़ाये जाने की मांग को लेकर अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (अभाविप) कार्यकर्ताओं ने महाविद्यालय में प्रदर्शन कर कुलपति का पुतला फूंका। कार्यकर्ताओं ने परीक्षा तिथि नहीं बढ़ाये जाने पर उग्र आंदोलन की चेतावनी दी है।

मालूम हो विश्वविद्यालय प्रशासन ने नौ अप्रैल से परीक्षा तिथि घोषित की हुई है, जिसका छात्र संगठन विरोध कर रहे हैं। छात्रों की मांग है कि परीक्षा की तैयारियों के बाबत पर्याप्त समय की जरुरत है। ऐसे में परीक्षा तिथि को आगे बढ़ाया जाए।

प्रदर्शन के दौरान हुई सभा में वक्ताओं ने कहा कि विश्वविद्यालय प्रशासन छात्रहितों की अनदेखी करते हुए तानाशाही रवैया अपना रहा है जिससे हजारों छात्रों का भविष्य खतरे में है। इस वर्ष विधानसभा चुनाव और उसके बाद मतगणना के चलते महाविद्यालय दो माह से अधिक समय तक बंद रहा, जिस कारण महाविद्यालय में पठन पाठन नहीं हो पाया और अधिकांश विषयों के पाठ्यक्रम पूरा नहीं हो पाया है।

गत वर्ष परीक्षाफल और अंकतालिकायें उपलब्ध कराने में हुई देरी के कारण पढ़ाई देर से शुरू हुई। इस सबके बावजूद विश्वविद्यालय प्रशासन ने परीक्षाओं की तिथि नौ अप्रैल घोषित कर दी है, जो छात्र हितों के साथ खुला खिलवाड़ है। वक्ताओं ने कहा विश्वविद्यालय प्रशासन को परीक्षा तिथि बढ़ानी चाहिए। तिथि नहीं बढ़ाये जाने की स्थिति में अभाविप पूरे कुमाऊं मंडल में उग्र आंदोलन छेड़ देगा। सभा की अध्यक्षता विपिन जोशी ने की। सभा के बाद कार्यकर्ताओं ने नारेबाजी करते हुए कुलपति का पुतला फूंका।

अंग्रेजी की भेट चढ़ती ग्रामीण प्रतिभा

• अभिषेक रंजन

एम्स में मेडिकल छात्र अनिल अंग्रेजी की भेट चढ़ गया। अनिल का सिर्फ इतना दोष था कि उसको इंग्लिश ठीक से नहीं आती थी। उसके हौसले बुलंद थे जिससे वह देश के सर्वोच्च मेडिकल संस्थान में दाखिला लेने में सफल रहा लेकिन उसकी प्रतिभा अंग्रेजी की काली छाया से उबर नही पायी और उसकी मौत की भी वजह बनी। वह लगातार अंग्रेजी बढ़िया नही होने के कारण फेल हो रहा था और भविष्य की चिंता में तनावग्रस्त होकर अंततः आत्महत्या करने पर मजबूर हो गया।

भारत में एक अनिल ही नही बल्कि न जाने कितने अनिल इसी कातिल अंग्रेजी से पढ़ाई के दौरान जूझ रहे है और अपने अस्तित्व व सुनहरे भविष्य के राह में रोड़ा अटकाती अंग्रेजी की बाधा को हटाने हेतु संघर्ष कर रहे है।

समस्यायों से लगातार जूझते छात्र

कक्षाओं में अंग्रेजी में लेक्चर होता है तो पढ़ाई की सारी सामग्री भी अंग्रेजी में ही मिलती है। हिंदी माध्यम की किताबें भी पुस्तकालय में नहीं दिखती बल्कि वह अंग्रेजी की किताबों से भरी होती है। संयोगवश कुछ किताबें भी देखने को मिल जाये तो वह काफी पुराने संस्करण की होती हैं तथा आवश्यकता के अनुरूप नहीं होती। ऐसी स्थिति कानून के विद्यार्थी की हैसियत से मैंने व्यक्तिगत और प्रत्यक्ष तौर पर दिल्ली विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों में देखी है जहाँ हिंदी की पुस्तकें काफी कम संख्या में उपलब्ध है। हिंदी माध्यम से लाने वाले छात्रों को सही सूचनायें भी हिंदी में नहीं मिल पाती, क्यूंकि सारी सूचना सम्बन्धी पत्रक भी अंग्रेजी में ही नोटिस बोर्ड पर टंगते है। अंग्रेजी की वजह से मानसिक प्रताड़ना भी होते देखने को मिलती है। अंग्रेजी स्कूल के बच्चे स्वभावतः हिंदी स्कूल से जाने वाले प्रतिभाशाली बच्चों को नजरअंदाज करते हैं और शिक्षक भी कई बार उनसे समान व्यवहार नहीं रखते। अंग्रेजी न जानने वाले छात्र अपने साथियों के बीच भी अंग्रेजी की वजह से उपहास का पात्र बनते हैं और कुंठित होकर दोस्ती करने में भी हिचकिचाते है। नतीजा यह होता है कि धीरे–धीरे ऐसे बच्चे अपने को शेष बच्चों से अलग कर लेते हैं और कई मामलों में घोर निराशा के शिकार हो जाते हैं, जिसकी परिणति आत्महत्याओं में होती है। मामला यही तक सीमित नहीं है बल्कि यह स्थिति कई अन्य प्रकार की समस्याओं को भी जन्म देती है।

अंग्रेजियत की आंधी में नष्ट होती ग्रामीण प्रतिभा

अंग्रेजी के इस कुप्रभाव के सबसे ज्यादा शिकार ग्रामीण पृष्ठभूमि में पढ़े बच्चे हो रहे है। समस्याओं से दिन–रात जूझते व 70 फीसदी ग्रामीण आबादी से सम्बन्ध रखने वाले मिट्टी के लालों की योग्यता आज अंग्रेजी की आंधी में धूल–धूसरित होती जा रही है। अंग्रेजी की प्राथमिकता की वजह से न केवल ग्रामीण प्रतिभा कुंठित होती जा रही है, बल्कि उसकी योग्यता भी उचित स्थान पाने में सफल नही हो पा रही।

गाँव और छोटे शहरो में हिंदी माध्यम से पढ़ने वाले छात्रों का अच्छे संस्थानों में नामांकन लेने का सपना होता है। अभावों से जूझते व गाँव की गलियों में दिये जलाकर पढ़ाई करने वाला विद्यार्थी अपने मेहनत के बल पर प्रवेश परीक्षायें देता है। जब वह नामी–गिरामी शिक्षण संस्थानों में नामांकन के अपने सपनों को पूरा होते देखता है तो उसकी आँखों में एक अजीब सी उत्साही चमक आ जाती है।

सफलता के आसमान में उड़ान भरने वाली इच्छाओं को मानो पंख मिल जाते हैं। लेकिन उसकी खुशी उस समय मायूसी में बदल जाती है जब अंग्रेजी के प्रभाव के कारण उसे हर प्रकार की दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। बड़ी संख्या में छात्र ग्रामीण इलाकों से आते हैं जिनकी अंग्रेजी बहुत अच्छी नहीं होती। ये अंग्रेजी समझ तो सकते हैं लेकिन जब प्रोफेसर बोलते हैं तो उनकी बात समझ में नहीं आती। अगर छात्र क्लास में अंग्रेजी की अल्प जानकारी होने की बात बोलता है तो वो खुद को अपमानित महसूस करता है।

अधिकांशतः हिंदी माध्यम से आने वाले छात्रों की हिंदी के साथ–साथ सम्बंधित विषय पर भी पकड़ होती है लेकिन सिर्फ अंग्रेजी की वजह से उनकी प्रतिभा को बेकार समझ लिया जाता है। अंगेजी के कारण तनाव झेल रहे छात्रों के लिए काउंसलिंग की कोई प्रणाली भी अमूमन नहीं होती है, जिस कारण तनाव में घिरे छात्र पूरी तरह से अवसाद में चले जाते हैं और अंततः आत्महत्या करने को प्रेरित होते है। देखने में आता है कि प्रशासन ऐसी समस्यायों के प्रति संवेदनशील नहीं रहता।

अंग्रेजी के वर्चस्व के लगातार प्रयास

कुछ दिनों पहले प्रशासनिक सेवाओं में भी हिंदी की स्वीकार्यता को समाप्त कर अंग्रेजी के प्रभुत्व को स्थापित करने की कोशिश हुई। हाल में आइआइटी में भी सीबीएसई के छात्रों को अंकों के मामले में तरजीह देने की बात की गयी। नए प्रावधान के मुताबिक बारहवीं के अंक अब ज्यादा महत्वपूर्ण होंगे और छात्रों द्वारा बारहवीं में प्राप्त अंक आइआइटी में नामांकन के निर्धारण के समय 40 तक मायने रखेंगे। ऐसे में स्वाभाविक है कि फिर एक बार ग्रामीण छात्र ही इससे प्रभावित होंगे क्यूंकि अधिकांश राज्य बोर्डों की परीक्षायें देते हैं जहाँ अंक कम मिलते हैं। इस फैसले के कारण अंग्रेजी स्कूलों में पढ़ने वाले छात्र ही इंजीनियर बनने का ख्वाब पूरा कर पाएंगे। इस प्रकार के फैसले और हिंदी सहित तमाम क्षेत्रीय भाषाओं की विरोधी प्रवृति के पीछे ग्रामीण योग्यता को नकारने व सर्वोच्च पदों तक उन्हें नहीं पहुचने देने की साजिश चलने की गंध आ रही है।

मातृभाषा में हो कक्षाएं

अगर विद्यार्थी हिंदी में पढ़कर अच्छे संस्थानों की प्रवेश परीक्षाओं को पास कर सकता है फिर ऐसे में छात्रों की आगे की पढाई का भी इंतजाम होना चाहिए ताकि मात्र भाषाई दिक्कतों से आत्महत्या जैसे प्रयास करने को छात्र मजबूर न होने पाए। शिक्षण संस्थानों की यह जिम्मेदारी सुनिश्चित की जाये कि वह उनके पढाई के माध्यम का भी ख्याल रखे। अनिल ने एम्स की अंडरग्रेजुएट प्रवेश–परीक्षा में हिंदी भाषा में अपने उत्तर लिखे थे। अगर अभ्यर्थियों के चयन में हिंदी माध्यम स्वीकार्य है तब कक्षाओं में क्यों नहीं हो सकती? अंग्रेजी के जो क्लास चलाये जाते हैं अगर वह विद्यार्थियों के लिए नाकाफी हैं तो फिर अंग्रेजी में ही पढ़ाने की जिद क्यूँ? क्यूँ न विद्यार्थियों को उनकी मातृभाषा में ही पढाया जाये? इस पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। यह निर्णय संविधान के निर्धारित मापदंडों के दायरे में होगा और इसे राजभाषा हिंदी के सम्मान के रूप में देश व समाज देखेगा।

शिक्षकों द्वारा शुरू हो पहल

ऐसी मानसिकता विकसित करने के प्रयास हों जिससे हिंदी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में पढ़कर निकले छात्रों को अंग्रेजी से परेशानी महसूस न हो, जैसे– क्लास के दौरान उनको सवाल उनकी मातृभाषा में पूछने को प्रोत्साहित करना व उनके द्वारा पूछे गये सवाल का जबाब उन्हीं की भाषा में देने की कोशिश करना ताकि विद्यार्थी को अंग्रेजी की समस्या से जूझना न पड़े और प्रतिभा भाषाई बोझ के तले दबी न रहे। कॉलेजों में प्रोफेसर इतने प्रशिक्षित हों कि वे हिंदी भी अंग्रेजी के साथ पढ़ा सकें और बच्चों की जिज्ञासाएं हिंदी भाषा में शांत कर सकें।

भाषा सुधार हेतु खोले जाये भाषा विकास केंद्र

वर्तमान में देश में 13.62 लाख प्राथमिक व उच्चतर प्राथमिक विद्यालय है। इनमे से लगभग 53 प्रतिषत (7,19,387) स्कूलों में हिंदी माध्यम से शिक्षा दी जा रही है जबकि मात्र 11.7 (1,58,866) विद्यालय अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा प्रदान करते हैं। अब ऐसे में अगर किसी ने स्कूल तक हिंदी या तमिल में पढ़ाई की है और उसे अंग्रेजी ठीक से नहीं आती तो यह उसकी कमजोरी नहीं है। सरकार को यह व्यवस्था बनानी चाहिए कि ऐसे छात्रों के लिए विद्यालयों में अंग्रेजी सिखाने का प्रावधान हो। हर शैक्षणिक संस्थान में भाषा विकास केंद्र खोला जाये। क्षेत्रीय भाषाओं के साथ–साथ विशेष रूप से हिंदी भाषा के जानकार लोगों की उसमें नियुक्तियां हों। इससे भाषा सुधार में मदद मिलेगी। विदेशी विश्वविद्यालयों से हम इस मामले में सीख ले सकते है जहाँ टॉफेल जैसी परीक्षाएं लेकर छात्रों का भाषाई ज्ञान आँका जाता है। छात्रों को यह पता रहता है कि हमारी भाषाई कमी कितनी है।

दूसरे देशों के अनुभव

भारत कहने को अपने को उभरती हुई महाशक्ति

बताता है और विकसित देश होने के पथ पर अग्रसर बताता है। फिर क्या भारत बिना भाषा की समृद्धि के समृद्ध हो जायेगा? क्या भारत सिर्फ अंग्रेजी से ही महान देश बन जायेगा? कतई नहीं, क्यूंकि आंकड़े और वास्तविकता कहती है कि जो देश विकसित हुए हैं, अपनी भाषा की समृद्धि की वजह से हुए। क्या वजह है कि चीन ने पिछले 20 सालों में भारत को उच्च शिक्षा के मामले में काफी पीछे छोड़ दिया है। चीन में भारत से पांच गुणा उच्चस्तरीय शोध–पत्र निकलते हैं। चीन ऐसा कर पाने में इसलिए सफल हुआ क्यूंकि उसने अपनी शिक्षा पद्धति अपनी मातृभाषा में विकसित की। भारत में अभी प्रति वर्ष 6000 छात्र शोध करते हैं जबकि चीन में जहाँ 1993 तक 1900 शोध प्रतिवर्ष होते थे, आज 22,000 शोध–छात्र हैं। उच्च शिक्षा में जहां भारत चीन और मलेशिया सरीखे देशों से एक जमाने में काफी आगे होता था, आज काफी पीछे चला गया है।

भारत का सकल–पंजीकरण अनुपात अभी भी महज 13.5 फीसदी है जबकि अमेरिका 81.6, चीन 22.1 व मलेशिया में 27 प्रतिशत है। जापान, रूस आदि देश भी अपनी भाषा के विकास से विकसित हुए जो पूरी दुनिया के सामने आज उदाहरण बने हुए हैं। इसलिए समय की मांग है कि अपनी भाषा को सरल, सुगम, सर्वव्यापी बनाया जाये। सहजता से पढ़ने, बोलने लायक हिंदी भाषा को पढ़ाई का माध्यम बनाने में कोई आपत्ति भी किसी को नहीं होनी चाहिए। अच्छा डॉक्टर बनने के लिए विषयज्ञान (चिकित्सा विज्ञान) जरूरी है न कि भाषाज्ञान (अंग्रेजी ज्ञान)। अंग्रेजीदां लोगों ने एक दुष्प्रचार कर रखा है कि अंग्रेजी ज्ञान और विकास की भाषा है। हकीकत यह है कि ज्ञान और विकास का किसी भाषा विशेष से कोई संबंध नहीं होता है।

यह कितनी बड़ी मानवीय विडम्बना है कि भाषा जिसे सिर्फ संप्रेषण का माध्यम होना चाहिये था हमारे समाज में वर्चस्व का प्रतीक हो गया है और जिसकी अज्ञानता से किसी की जान तक जा सकती है।

साथ ही पुस्तकालयों में हिंदी में किताबें प्रचुरता व आसानी से उपलब्ध होनी चाहिए। शैक्षणिक संस्थानों को अपने ऊपर यह दायित्व लेने के लिए सरकार को प्रोत्साहित और निर्देशित करना चाहिए कि वह विश्व की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों का अनुवादित संस्करण अपने छात्रों को मुहैया कराए।

हिंदी के सम्मान में अंग्रेजी का विरोध नहीं

विश्व की सर्वमान्य प्रचलित संपर्क भाषा के रूप अंग्रेजी का सम्मान किया जाना चाहिए। एक भाषा के रूप में उसका अध्ययन करना चाहिए और उसका ज्ञान भी होना चाहिए। अंग्रेजी की जानकारी आज की जरुरत है लेकिन अंग्रेजी को जबरदस्ती थोपने की नीति कितनी जायज है इस पर व्यापक विचार–विमर्श की आवश्यकता है। यह अंग्रेजी का वर्चस्ववादी डरावना रूप है, जहाँ कोई होनहार और प्रतिभाशाली छात्र हिंदी माध्यम से कामयाबी का सफर तय करने के बावजूद अंग्रेजी के औसत ज्ञान के कारण फिसड्डी और असफल मान लिया जाता है।

ऐसे समय में, जब भारत को उच्च शिक्षा की सर्वोत्कृष्ट स्थिति में पहुँचाने के लिए सरकार लगातार नयी नीतियां बना रही है तो कम से कम देश की जमीनी हकीकत को भी ध्यान में रखने की जरुरत है। अधिकांश भारतीय छात्र अपनी राह में अंग्रेजी को रोड़ा न मानें, इसके लिए सरकार को मजबूत इरादे से प्रयास करने चाहिए।

विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी के साथ–साथ हिंदी के व्यापक प्रचार और विस्तार, साथ ही हिंदी माध्यम से पढने आए छात्रों के लिए भाषाई दिक्कतों को दूर करने के लिए उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था करना जरुरी है। साथ ही साथ अंग्रेजी के प्रति पूर्वाग्रह वाली सोच भी हमें बदलनी पड़ेगी ताकि अंग्रेजी कुंठा अनिल के साथ साथ अनेक प्रतिभाओं की अकाल मौत के लिये जिम्मेवार न बने। यह प्रश्न आज हर भारतीय के मन में उठने चाहिए कि क्या अंग्रेजी कम जानने वाले ग्रामीण अंचलों के छात्रों को नीची नजर से देखा जाना चाहिए? क्या उनकी प्रतिभा का मजाक उड़ाना सही है? वक्त इन सवालों के साथ त्वरित जबाब भी चाहता है।

अंग्रेजियत की विनाशकारी प्रवृत्ति ने प्रतिभाशाली छात्रों की योग्यता को कम करके आंकने का काम किया है जिसके कारण हताश और निराश मातृभाषा आज अपने लिए कुछ करने का आग्रह सरकार और समाज से कर रही है ताकि उसके लाल अपनी प्रतिभा की लालिमा बिखेर सकें और भारत की समृद्धि में अपना योगदान दे पाएं।

एबीवीपी की भूख हडताल के आगे झुका प्रशासन

नई दिल्ली, 28 मार्च। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद एवं दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ ने खेल परिसरों को खोलने व बढ़ी परीक्षा फीस को वापस लेने की मांग को लेकर दिल्ली विश्वविद्यालय की आर्ट फैकल्टी में भूख हड़ताल की।

एबीवीपी व डूसू के आन्दोलन के दबाव में विश्वविद्यालय प्रशासन ने भूख–हड़ताल पर बैठे छात्र नेताओं से मिलकर खेल परिसर को खोले जाने की घोषणा की और प्रशासन ने विश्वास दिलाया कि जल्द ही फीस वृद्धि संशोधन पर भी विचार किया जायेगा।

गौरतलब है कि राष्ट्रमंडल खेलों के बाद से खेल परिसरों को अब तक छात्रों के लिए नहीं खोला गया है। परीक्षा शुल्क में भी दोगुनी बढ़ोत्तरी की गई है। इसके पहले भी परिषद इन मांगों को लेकर कई आन्दोलन कर चुकी है और अपनी मांगों के संदर्भ में कुलपति को ज्ञापन भी सौंप चुकी है।

भूख हड़ताल में एबीवीपी प्रदेश संगठन मंत्री डॉ. योगेन्द्र पयासी, संदीप राणा, गोविन्द सिंह, दीपक पाठक, सौरभ उनियाल, डूसू पदाधिकारी विकास चौधरी, विकास यादव, परीक्षित डागर, राजेन्दर रावत आदि छात्र नेता मौजूद रहे।

गिलानी का दिल्ली आने पर एबीवीपी ने किया विरोध

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, दिल्ली प्रदेश के कार्यकर्त्ताओं ने अलगाववादी नेता सैयदशाह गिलानी के खिलाफ विरोध प्रदर्शन किया। गौरतलब है कि आज शाम 4 बजे कश्मीर के अलगाववादी नेता सैयद शाह गिलानी एक कान्फेंस को सम्बोधित करने दिल्ली आये थे। तभी विद्यार्थी परिषद के कार्यकर्त्ता वहाँ पहुंचकर गिलानी के खिलाफ नारेबाजी करने लगे। गिलानी वापस जाओ, जहाँ हुए बलिदान मुखर्जी वो कश्मीर हमारा है, नारों के बीच एबीवीपी के प्रदेश मंत्री रोहित चहल ने कहा कि कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है और देश के खिलाफ किसी भी कदम को एबीवीपी बर्दाश्त नहीं करेगी।

विरोध प्रदर्शन का नेतृत्व कर रहे डूसू पदाधिकारियों ने भी कहा कि अलगाववादी गतिविधियों को प्रश्रय देने वाले किसी भी नेता को दिल्ली विश्वविद्यालय छात्रसंघ बर्दाश्त नहीं करेगा।

प्रदर्शन में एबीवीपी के प्रदेश संगठन मंत्री डॉ. योगेन्द्र पयासी, प्रदेशमंत्री रोहित चहल, संदीप राणा, गोविन्द सिंह, दीपक पाठक समेत डूसू पदाधिकारी विकास चौधरी, विकास यादव, दीपक बंसल एवं सचिन सिंह समेत कई छात्र नेता उपस्थित थे।

गिलगित को तिब्बत बनाने का षड्यंत्र

• जवाहर कौल

समरनीति के बारे में दृष्टि दोष हमारा राष्ट्रीय रोग रहा है। घर के बाहर जुटते तूफानों का आभास हमें तब होता है तब तूफान हमें बुरी तरह झकझोर देता है। इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में आयोजित एक महत्त्वपूर्ण गोष्ठी में वरिष्ठ राजनयिक जी. पार्थसारथी का कहना है कि हम ने दो ही समरनीति विशारद पैदा किए, प्राचीन भारत में कौटिल्य और हाल के इतिहास में महाराजा रणजीत सिंह। रणजीत सिंह को इस बात का एहसास था कि हमारी पश्चिमी सीमा के बाहर राजनैतिक और सांप्रदायिक स्थितियां हर समय अस्थिर रहतीं हैं और समय–समय पर जब उन में उबाल आता है तो पश्चिमोत्तर भारत पर आक्रमण होता है। उन्हें यह समझने में देर नहीं लगी कि सीमाओं के बाहर आकार लेते हुए इस तूफान को अप्रभावी करने के लिए उसके भारत का रुख करने की प्रतीक्षा करने के बदले उसके स्रोत पर ही वार करना होगा।

काबुल पर चढ़ाई पंजाब के राजा की क्षेत्रीय भूख का परिणाम नहीं था, अपने राज्य की सुरक्षा की आवश्यकता का सही आकलन था। लेकिन पश्चिमोत्तर और पूर्वोत्तर दिशाओं से होने वाले सभी अन्य खतरों के बारे में स्वतंत्र भारत की सरकारों के समरनैतिक अंधत्व का ही परिचय मिलता है। वह 1947 में उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत से कश्मीर पर होने वाला कबाइली हमला हो, 1962 में पूर्वोत्तर से चीनी आक्रमण हो या फिर हाल में करगिल का आक्रमण हो। वास्तव में तिब्बत पर चीनी अधिकार को स्वीकार करना स्वतंत्र भारत की सबसे बडी राजनैतिक भूल थी जिसका निराकरण हम तब भी नहीं कर पाए जब चीन ने बाकायदा चीन में फौजी कार्रवाई करके दलाई लामा को पलायन करने पर मजबूर कर दिया। विस्तारवादी चीन और भारत के बीच एक मित्र देश एक सुरक्षा दीवार की तरह काम कर सकता था। लेकिन इसके विलीन होने के बाद चीन की सीमाएं भारत के साथ ही नहीं आई, अपितु हमारी अपनी सीमाएं विवादस्पद बन गईं। नेपाल और भारत के बीच अविश्वास की खाई भी इसी कारण पैदा हुई और पाकिस्तान और चीन की सामरिक धुरी भी इसी का परिणाम हैं।

लेकिन अब हमें एक और खतरे का सामना करने के लिए तैयार होना चाहिए। जम्मू–कश्मीर के बीच ही नए तिब्बत का विकास किया जा रहा है, जो न केवल कश्मीर के एक बड़े भू–भाग को भारत से अलग कर सकता है अपितु जिससे पूरे भारत की प्रभुसत्ता भी खतरे में पड़ सकती है। एक अमेरिकी अनुसंधान संस्थान के इस दावे को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि पाकिस्तान और चीन के बीच एक समझौता होने जा रहा है जिसके तहत पाकिस्तान गिलगित और बल्तिस्तान के एक बड़े क्षेत्र को चीन के हवाले करेगा। सामान्यतया पश्चिमी स्रोतों से छपे बहुत से समाचारों पर एकदम विश्वास करना मुश्किल होता है, क्योंकि उन का उद्देश्य अमेरिकी हितों को ही साधना होता है। लेकिन इस समाचार का मूल स्रोत अमेरिका नहीं, स्वयं बल्तिस्तान ही है। बांगे रोजनामा सहर ने इस समाचार को अपने विशेष संवाददाता के नाम से छापा कि पाकिस्तान चाहता है कि चीन कश्मीर में भारत के खिलाफ राजनैतिक और सैनिक सहयोग के अतिरिक्त ग्वादर में सैनिक बंदरगाह बनाने में मदद कर। लेकिन चीन इसके बदले पाकिस्तान से मांग कर रहा है कि वह कश्मीर के गिलगित और बल्तिस्तान क्षेत्रों को पच्चास साल के पट्टेपर चीन के हवाले करे ताकि वहां पर्याप्त संख्या में चीनी सैनाऐं तैनात की जा सकें।

साफ है चीन अपनी सेना को कश्मीर में केवल कारोकरम राजमार्ग की सुरक्षा के लिए नहीं रखना चाहता है अपितु वह स्थाई तौर पर इस इलाके पर अपना शासन स्थापित करने के दूरगामी षड्यंत्र पर काम कर रहा है। चीन के इरादों का अंदाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि सियाचिन ग्लेशियर के पार शक्सगाम घाटी में भी चीन और पाकिस्तान के बीच ऐसा ही एक समझौता हुआ है। हांलाकि समझौते की शर्तों में

गरीबी की नई परिभाषा

• रवि शंकर

केन्द्र सरकार ने गरीबी की नई परिभाषा फिर तय की है। योजना आयोग की मानें तो देश के शहरी इलाको में प्रतिदिन 28 रुपये 65 पैसे व ग्रामीण इलाकों में रोज 22 रुपये 42 पैसे खर्च करने वाले व्यक्ति को गरीब नहीं कहा जा सकता। अत्याधिक महंगाई और खाद्य पदार्थों की बढ़ती कीमतों के इस दौर में आयोग का यह आंकड़ा चौंकाने वाला है। भले ही आसमान छूती महंगाई में इतनी राशि में एक वक्त का खाना न आता हो, लेकिन योजना आयोग की नजर में इतने रुपये गरीबी दूर करने के लिए काफी हैं। अगर सीधे शब्दों में इस मायने को समझने का प्रयास किया जाए तो आयोग ने ये बताने की कोशिश की है कि शहरों में 859 रुपये और गांवो में 672 रुपये खर्च करने वाला व्यक्ति सरकार की नजरों में गरीब नहीं है। गौरतलब है कि पिछले साल भी योजना आयोग ने गरीबी रेखा को परिभाषित करते हुए कहा था कि शहरों में जो व्यक्ति हर महीने 965 रु. मासिक (यानी 32.16 रु. रोज) व गांवों में 781 रु. मासिक (यानी 26.03 रु. रोज) खर्च करता है वो गरीब नहीं माना जाएगा। योजना आयोग की ओर से जारी पिछले पांच साल के तुलनात्मक आंकड़े कहते हैं कि 2004–05 से लेकर 2009–10 के दौरान देश में गरीबी 7.3 फीसदी घटी है। रिपोर्ट के मुताबिक 2004–05 में गरीबी का अनुपात 37.2 प्रतिशत था जो 2009–10 में घटकर 29.8 फीसदी हो गया। रिपोर्ट के अनुसार देश में करीब 35 करोड़ लोग गरीब है। जबकि 2004–05 मे यह आंकड़ा 40.72 करोड़ था। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि सरकारी आंकड़ो के हिसाब से अब देश के गांवों में हर तीन में से एक आदमी गरीब है। जबकि शहरों में हालात इससे थोड़े से बेहतर हैं। वहां हर पांच में से एक आदमी गरीब है। ये आंकड़े साल 2011 की जनगणना के नतीजों से भी मेल खाते हैं, जो घर–घर जाकर जमा किए गए थे।

गरीबी के मौजूदा सरकारी अनुमानों के साथ सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि आयोग ने तेंदुलकर समिति के फार्मूले को आधार बनाकर गरीबी का अनुमान लगाया है। तेंदुलकर समिति ने अपनी गणना के लिए भोजन, शिक्षा और स्वास्थ्य पर औसत खर्च को आधार बनाया। इस औसत खर्च को पर्याप्त माना गया। जिसका अर्थ है कि सरकार को यह ठीक लगा कि इतनी राशि गरीबों की रोजमर्रा की जिंदगी के लिए काफी है। सच पूछिए तो गरीबी का नया आंकलन एक ऐसी काल्पनिक रेखा है जिसका मकसद गरीबों की वास्तविक संख्या का पता लगाना नहीं बल्कि किसी भी तरह से उनकी संख्या को कम से कम करके दिखाना है।

हालांकि विश्लेषकों का कहना है कि योजना आयोग की ओर से निर्धारित किए गए ये आंकड़े भ्रामक हैं और ऐसा लगता है कि आयोग का मक़सद ग़रीबों की संख्या को घटाना है ताकि कम लोगों को सरकारी कल्याणकारी योजनाओं का फ़ायदा देना पड़े। लेकिन योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोंटेक सिंह अहलूवालिया ने इस पर सफाई देते हुए कहा है कि इन आंकड़ों का सरकारी योजना का लाभ उठाने वालों से कोई लेना देना नहीं है। बल्कि इन सारी कवायद का असल मकसद ये जानना होता है कि गरीबी रेखा से नीचे रहे लोगों की जिदंगी में सरकारी योजनाओं का कोई सकारात्मक असर हो रहा है या नहीं। लेकिन योजना आयोग के इस आंकेड़ पर चौतरफा सवाल उठ रहे हैं, योजना आयोग का यह दावा हास्यास्पद है कि मौजूदा आर्थिक नीतियों के कारण गरीबी घटी है। ये दावे आज ही नहीं हो रहे हैं। इंदिरा गांधी के जमाने में भी बैंकों के राष्ट्रीयकरण के जरिए गरीबी हटाने के दावे किए गए। बैंक कर्ज दे रहे थे, लेकिन वह बिचौलियों की जेबों में जा रहा था। परिणामस्वरूप गरीबी हटने की बजाय भ्रष्टाचार के खिलाफ 1974–75 में गुजरात से लेकर बिहार तक सरकार को जन विस्फोट का सामना करना

पड़ा। ये आंकड़ेबाजियां महज छलावे के लिए हैं। सच्चाई यह भी है कि जिन आकड़ों को वह अपनी उपलब्धियां मान रही हैं, वे उसकी विफलता के बारे मे भी बताते हैं। भले ही पांच साल में सरकार ने करीब सात फीसदी की दर से गरीबी हटाई, लेकिन इस बारे में भी चुप्पी साध ली है कि इस दौरान तीन साल आर्थिक विकास दर नौ फीसदी से अधिक होने के बावजूद अनुसूचित जनजातियों की 47.4 फीसदी आबादी गरीबी रेखा से नीचे क्यों है।

वास्तव में सच्चाई यह है कि अपने देश में गरीबों की वास्तविक संख्या के बारे में कोई ठोस आंकड़ा नहीं है। यही वजह है कि केन्द्र हमेशा से भ्रमा

की स्थितियां पैदा करता रहा है। मिसाल के तौर पर नेशनल सैंपल सर्वे आगेनाइजेशन के मुताबिक देश में 60.50 फीसदी, ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा गठित एनसी सक्सेना समिति के अनुसार 50 फीसदी, अर्जुन सेन गुप्ता के अनुसार 77 फीसदी, सुरेश तेंदुलकर की अगुवाई वाले विशेषज्ञ समूह की रिपोर्ट के अनुसार 37.2 फीसदी व योजना आयोग के मुताबिक यह संख्या 21.8 से 27.5 प्रतिशत है। बेशक आकलन अलग– अलग हो सकते हैं, किंतु यह समझने के लिए किसी फॉर्मूले की जरुरत नहीं है कि प्रतिदिन 28.65 तथा 22.42 रुपये से शहरों एवं गांवों में गरिमामय जीवन नहीं जिया जा सकता है। योजना आयोग का उद्देश्य है गरीबी एवं असमानता को कम करना। आजादी के समय देश की आबादी 32 करोड़ थी। अभी उससे कहीं ज्यादा आबादी गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों की है, जबकि गरीबी रेखा बहुत नीचे रखी गई है। इसकी तुलना अमेरिका की गरीबी रेखा से करें, जहां 11,139 डॉलर यानी करीब 46,000 रुपये से कम मासिक आय वालों को गरीब माना जाता है।

गरीबी रेखा से नीचे की जनसंख्या की गणना हर पंचवर्षीय योजना से पहले की जाती है। 1992 में पहली बार गरीबी रेखा के नीचे की आबादी की जो गणना की गई थी, उसमें 11,000 रुपये वार्षिक आय को मानक बनाया गया था, जो गरीबी की गणना के लिए आज प्रयोग किए जा रहे पैमाने से ज्यादा बैठती है। तब योजना आयोग ने गरीबों की इस गणना को बहुत ज्यादा बताकर इस आंकड़े को मानने से ही इनकार कर दिया था। अब तो हालत यह है कि सर्वेक्षण चाहे कुछ भी हों, किसी राज्य में गरीबों की संख्या योजना आयोग द्वारा तय सीमा से अधिक नहीं जानी चाहिए।

योजना आयोग गरीबी की ताजा आंकड़ा देते समय यह भूल गया कि विश्व बैंक भी रोजाना एक डॉलर से कम खर्च करने वाले व्यक्ति को गरीबी रेखा से नीचे मानता है। आयोग के इस नये आंकड़े पर संसद के दोनों सदन में विपक्ष ने सरकार को घेरा। सरकार के भीतर भी इसके कुछ सहयोगी दल योजना आयोग को इस नये फार्मूले पर आपत्ति जताई है। यूं कहें सड़क से संसद तक मचे बवाल के बाद आखिरकार सरकार एक बार फिर से नई गरीबी रेखा निर्धारित करने की बात कर रही है। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने एक विशेषज्ञ समूह के गठन का ऐलान कर दिया। यह समूह देश में गरीबों की संरूया का पता लगाने के नए तरीके सुझाएगा। दूसरी ओर देश भर से लोगों का सरकार से बस एक ही सवाल है कि मंहगाई के इस दौर में इतने रुपये में क्या मिलेगा।

आज तो एक किलो टोंड दूध का भी दाम 29 रुपये है। इस राशि से 2 लीटर बोतल बंद पानी भी नही मिलता है। उसके लिए भी 30 रुपये चाहिए। इस प्रसंग में विश्व बैंक की पिछले साल की रिपोर्ट ज्यादा प्रासांगिक है, जिसमें कहा गया है कि गरीबी से लड़ने के लिए भारत सरकार के प्रयास पर्याप्त नही है।

भारत की सबसे बड़ी विडंबना है कि आज भी करोड़ों लोग भुखमरी और कुपोषण के शिकार है, वे इसलिए कि वे इंसान है। जबकि ग्लोबल हंगर इंडेक्स –2011 के मुताबिक 81 देशों की सूची में भारत का स्थान 67 वां है, जो अपने पड़ोसी मुल्क पाकिस्तान और श्रीलंका से भी नीचे है। मौजूदा वक्त में देश की लगभग एक तिहाई आबादी भूखी व कुपोषित है। ऐसे में यह अनुमान लगाया जा सकता हैं कि देश में गरीबी, भुखमरी, कुपोषण और बदहाली की क्या स्थिति है। वहीं लाखों टन अनाज भारतीय खाद् निगम (एफसीआई) के गोदामों और अन्य स्थानों में रख–रखाव की कमी के कारण हर साल सड़ जाता है। रिपोर्ट के मुताबिक, जनवरी 2010 में 10,688 लाख टन अनाज एफसीआई के गोदामों में खराब पाया गया, जिससे दस साल तक छह लाख लोगों का पेट भरा जा सकता था। वर्ष 1997 से 2007 के बीच 1.83 लाख टन गेहूं, 6.33 लाख टन चावल, 2.20 लाख टन धान और 1.11 लाख टन मक्का एफसीआई के विभिन्न गोदामों में खराब पाया गया।

सरकार और सरकारी तंत्र को गरीबी रेखा तय करते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत में गरीबी रेखा के निर्धारण का सीधा असर लोगों के जीवन पर पड़ता है। अपनी शीर्ष वरीयता के अनुरूप योजना आयोग द्वारा किया गया कोई मनमाना फैसला यह तय करेग कि झुग्गियों या गांवो में रहने वाला कोई परिवार राशन सुविधा व सब्सिडी दर पर स्वास्थ्य सेवा पाने का हकदार है या नहीं और अपने परिवार का सहारा बनी किसी गरीब विधवा को पेंशन पाने का पात्र माना जाए या नहीं। यही नहीं, गरीबों की संख्या इसलिए भी मायने रखती है क्योंकि इसके आधार पर ही राष्ट्रीय प्राथमिकताएं और राजनीतिक आर्थिक सामाजिक नीतियों की दिशा तय होती है।

दरअसल, सरकार में बैठे योजनाकारों द्वारा गरीबी मापने का जो पैमाना तय किया गया है वह गरीबी को मापने से ज्यादा गरीबी को छिपाने का काम करता है। यही वजह है कि गरीबी की परिभाषा को लेकर योजना आयोग और राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के बीच मतभेद बना रहा है। यह कितनी अचरज की बात है गरीबी की परिभाषा वे लोग तय कर रहे हैं, जिन्हें कभी गरीबी का सामना नहीं करनी पड़ता। पंचसितारा जैसी सुविधाओं से लैस एसी कमरों में बैठे हमारे देश के राजनेताओं, अफसरों को क्या पता कि गरीबी किसे कहते हैं। शहर में अगर 28 रुपए की राशि एक आदमी के रोज के भोजन के लिए काफी है, तो फिर उन्हें एक बार अपनी आय पर भी नजर डाल लेनी चाहिए।

देश में गरीबी और भुखमरी की हालत इतनी विकराल है कि जितनी बयां की जाए उतना ही कम होगा। पिछले छह दशक से हम गरीबी और भुखमरी से छुटकारा पाने के लिए संघर्ष कर रहें हैं ऐसे में सवाल अहम है कि क्या सरकार सही दिशा में प्रयास कर रही है। भलें ही सरकारी और गैर सरकारी प्रयास हर स्तर पर किए जाते है ताकि कोई भी गरीब और भूखा न रहे, लेकिन आंकड़ों की मानें तो भूमंडलीकरण के बावजूद स्थिति में कोई क्रांतिकारी बदलाव नहीं आया है। एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि गरीबी रेखा का जो मापदंड 2004 में था वही आज भी है, जबकि इस बीच सरकारी बाबुओं की तनख्वाहों ओर भत्तों में कई बार बढ़ोतरी हुई है। संगठित निजी क्षेत्र की आय में भी इजाफा हुआ है। सांसदों ओर विधायकों के वेतन भते कई गुना बढ़े, लेकिन गरीबों की बेहतरी के बारे में सोचने के बजाय आंकड़ों में उनकी संख्या को ही घटाकर दिखाने की कोशिश हो रही है, ऐसा इसलिए कि अगर सच्चाई सामने आती रहेगी तो कहीं देर–सबेर नीतियों और प्राथमिकताओं में बदलाव की मांग न उठने लगे। इसलिए सरकार और योजना आयोग को कृत्रिम आंकड़े गढ़ने के बजाए हकीकत स्वीकार करनी चाहिए। साथ ही ये आंकड़े सरकार के लिए आत्ममंथन का भी अवसर होना चाहिए, ताकि गरीबी के खिलाफ पूरे देश में प्रभावी कदम उठाए जा सकें।

(लेखक, सेन्टर फॉर इन्वायरमेंट एण्ड फूड सिक्योरिटी में रिसर्च –एसोशिएट हैं)

अपरिभाषित सेक्यूलरिज्म के जलवे

• शंकर शरण

हाल में कर्नाटक में स्कूलों में गीता पढ़ाने का एक प्रस्ताव आया। यह बच्चों को नैतिक शिक्षा देने हेतु एक मठ का अनुरोध था, जिसमें सरकार ने केवल स्कूलों को इसके लिए एक घंटा समय देने भर का निर्देश दिया था। इसमें सरकार को कुछ खर्च नहीं करना था। पर इस प्रस्ताव को अदालत में चुनौती दी गई। वामपंथी संगठनों ने प्रस्ताव के विरुद्ध राजनीतिक आंदोलन भी शुरू कर दिया।

किन्तु ध्यान दें कि 'अल्पसंख्यक' शिक्षा संस्थानों में मजहबी, मध्ययुगीन किताबें पढ़ाने का कभी विरोध नहीं होता। वे संस्थान हमारी शिक्षा–प्रणाली से बाहर नहीं हैं। हमारे देश के लाखों बच्चे और युवा अपनी संपूर्ण शिक्षा के लिए उन्हीं संस्थानों पर निर्भर हैं। उन संस्थानों को सरकारी अनुदान भी मिलता है। उन संस्थानों के प्रमाण–पत्रों को सामान्य शिक्षा संस्थानों के समकक्ष मानने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यहाँ तक कि उन्हें केंद्रीय विश्वविद्यालयों तक से जोड़ा जा रहा है।

इस प्रकार, गैर–हिन्दू मजहबी पुस्तकों की रटाई–पढ़ाई को औपचारिक शिक्षा में मान्यता मिल रही है। उन पुस्तकों में ऐसी बातें भी हैं जो दूसरे समुदायों के प्रति घृणा और क्रूरता तक सिखाती हैं। समाज, प्रकृति, कला आदि के बारे में भी उसमें अनेक नकारात्मक बातें हैं, जिनसे बच्चों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मगर ऐसी पुस्तकें हजारों संस्थानों में मुख्य पाठ्य–क्रम के रूप में पढ़ाई जाती हैं। जबकि हिन्दू कहलाने वाली एक महान, विश्व–विख्यात दार्शनिक पुस्तक को भी शिक्षा से जोड़ना अवैध कहा जाता है! यह विचित्र दोहरापन सेक्यूलरिज्म के नाम पर चलता है।

यह कैसा सेक्यूलरिज्म है?

भारतीय संविधान इस अर्थ में अटपटा बना दिया गया है, कि इस का एक आधारभूत सिद्धांत 'सेक्यूलरिज्म' नितांत अस्पष्ट है। प्रथम पृष्ठ पर यह शब्द लिख कर संविधान में जोड़ दिया गया, किन्तु कहीं परिभाषित नहीं किया गया। न अलग से कोई कानून बनाकर, न सुप्रीम कोर्ट के किसी निर्णय में इसका कोई स्पष्ट अर्थ दिया गया है। सबसे लाक्षणिक बात तो यह कि इसे पारिभाषित करने के प्रयास को भी बाधित किया जाता है। नेतागण, सुप्रीम कोर्ट और प्रभावी बुद्धिजीवी वर्ग सब ने इसे अस्पष्ट रहने देने की सिफारिश की है। यह सामान्य बात नहीं, क्योंकि इसी के सहारे भारत में एक विशेष प्रकार ही राजनीति का दबदबा बना, जिसकी धार हिन्दू–विरोधी है। और इसी को कवच बनाकर देश–विदेश की भारत–विरोधी शक्तियाँ भी अपने कारोबार करती हैं।

ध्यान देने पर यह किसी को भी दिख सकता है। कुछ पहले मधु किश्वर ने तवलीन सिंह (दोनों प्रसिद्ध पत्रकार) का ध्यान इस बात पर आकृष्ट कराया कि विचार–विमर्श में हिंदू शब्द केवल गाली के रूप में इस्तेमाल हो रहा है। तवलीन जी ने ध्यान देना शुरू किया और पाया कि बात सच है। उन्हें स्थिति ऐसी गंभीर लगी कि सेक्यूलरिज्म 'हिंदू सभ्यता के विरुद्ध चुनौती' बन गया है। भारतीय सभ्यता अपने उत्कर्ष पर हिंदू सभ्यता ही थी। जिसने संपूर्ण विश्व को गणित से लेकर दर्शन, धर्म, साहित्य और विज्ञान तक हर क्षेत्र में अनमोल उपहार दिए। किंतु आज भारत में यह बात कहना हिंदू सांप्रदायिकता है। इसीलिए किसी पाठ्य–पुस्तक में ऐसी बातों का संकेत भी अवांछित है। विश्व–प्रसिद्ध समाजशास्त्री मैक्स वेबर भगवतगीता को नैतिक राजनीति का विश्व में एकमात्र ग्रंथ कह सकते थे। किंतु कोई भारतीय आज यह लिखे तो वह 'भगवा लेखक' बताकर अपमानित किया जाता है। अतः सेक्यूलरिज्म को हिंदू–विरोध का दूसरा नाम कहकर तवलीन जी ने कड़वी सच्चाई बयान की थी।

सच पूछें तो ऐसे प्रसंग हमारे देश के बौद्धिक वातावरण पर एक टिप्पणी है। कि किस तरह एक विकृत मतवाद ने लोगों को इतना दिग्भ्रमित कर दिया है

कि वे देखकर भी नहीं देख पाते। अन्यथा तवलीन सिंह को यह समझने में इतने दशक न लगे होते। प्रसिद्ध इतिहासकार रमेश चंद्र मजूमदार ने 1965 में ही स्पष्ट देखा था कि, "इस देश में मुस्लिम संस्कृति और भारतीय संस्कृति की चर्चा की जा सकती है। मगर हिंदू संस्कृति की नहीं। हिंदू शब्द केवल नकारात्मक अर्थों में प्रयोग किया जाता है"। याद रहे, यह तब की बात है जब न राम–जन्मभूमि आंदोलन था, न विश्व–हिंदू परिषद थी। मगर तब भी 'हिंदू' शब्द का प्रयोग पोंगापंथी, सांप्रदायिक, फासिस्ट संदर्भ में ही होता था। चार दशक में आज वह 'विष' भी बन गया! जिससे विवध पुस्तकों, पदों, संस्थानों को मुक्त करने का 'डि–टॉक्सिफिकेशन' चलाना पड़ता है।

दुनिया के सबसे बड़े हिन्दू देश में हिन्दू–विरोध ही बौद्धिकता की कसौटी कैसे बन गया? यह सोचने की बात है। आरंभ यह जैसे भी हुआ, किन्तु दिनों–दिन इसकी बढ़त अपरिभाषित सेक्यूलरिज्म के कारण ही हुई। इसी से संभव होता है कि एक समुदाय के मजहबी शिक्षा–संस्थानों को भी अनुदान, सम्मान, पहचान मिले, जबकि दूसरे को अपनी औपचारिक शिक्षा में महान दार्शनिक ग्रंथों को भी पढ़ने की अनुमति न दी जाए। अपरिभाषित सेक्यूलरिज्म के डंडे से ही हिंदू मंदिरों पर सरकारी कब्जा कर लिया जाता है जब कि मस्जिदों, गिरजाघरों को संबंधित समुदाय को मनमर्जी से चलाने के लिए छोड़ दिया जाता है। इतना ही नहीं, कई बड़े हिन्दू मंदिरों की आमदनी से दूसरे समुदाय की हज यात्रा को करोड़ों का अनुदान दिया जाता है (कर्नाटक, आंध्र)।

यहाँ अवैध धर्मांतरण कराने वाले विदेशी ईसाई को राष्ट्रीय सम्मान दिया जाता है, जब कि अपने धर्म में रहने या वापस आने की अपील करने वाले हिंदू समाजसेवी को सांप्रदायिक कहकर लांछित किया जाता है। अप्रमाणित आरोप पर भी एक शंकराचार्य दीवाली के दिन गिरफ्तार कर अपमानित किए जाते हैं। जब कि मौलवियों–इमामों को देश–द्रोही बयान देने, संरक्षित पशुओं को अवैध रूप से अपने घर में लाकर बंद रखने, न्यायालयों की उपेक्षा करने पर भी छुआ तक नहीं जाता। उन्हें राजनीतिक निर्णयों में उन्हें विश्वास में लेकर उन की शक्ति बढ़ा दी जाती है। भयंकर आतंकवादी तक 'लादेन जी' का सम्मानित संबोधन पाता है, जबकि लब्ध प्रतिष्ठित योगाचार्य को 'रामदेव ठग' कहा जाता है।

यदि सेक्यूलरिज्म वैधानिक रूप से परिभाषित हो गया, तो यह सभी राजनीतिक मनमानियाँ और वैचारिक गुंडागर्दी नहीं हो सकेगी। इस सेक्यूलरिज्म की अस्पष्टता का ही करिश्मा है कि शिक्षा, संस्कृति और राजनीति दृ हर क्षेत्र में भारत में अन्य समुदायों को हिंदुओं से अधिक अधिकार मिले हुए हैं। इस अत्याचार पर जानकार हिंदू कसमसाते हैं, पर कुछ कर नहीं पाते। क्योंकि उन पर यह जुल्म हिंदू कुल में जन्मे, [illegible] सेक्यूलरिज्म में दीक्षित हो गए नेता व बुद्धिजीवी ही करते रहे हैं, कोई और नहीं।

कहने को अभी देश में सेक्यूलरिज्म की कम से कम चार परिभाषाएं हैं, यद्यपि कोई वास्तविक नहीं। विभिन्न लोग इच्छानुसार इनका उपयोग करते हैं। एक परिभाषा 1973 में न्यायाधीश एच. आर. खन्ना ने दी कि "राज्य मजहब के आधार पर किसी नागरिक के विरुद्ध पक्षपात नहीं करेगा"। कुछ बाद दूसरी परिभाषा कांग्रेस पार्टी ने दी, "सर्व–धर्म, सम–भाव"। तीसरी परिभाषा भाजपा की, "न्याय सबको, पक्षपात किसी के साथ नहीं"। चौथी एक टिप्पणी है। किंतु सुप्रीम कोर्ट के

पूर्व–मुख्य न्यायाधीश एम. एन. वेंकटचलैया की होने के कारण इस का महत्व है। इन के अनुसार "सेक्यूलरिज्म का अर्थ बहुसंख्यक समुदाय के विरुद्ध नहीं हो सकता"। यह टिप्पणी प्रकारांतर स्वीकारती है कि व्यवहार में इस का यही अर्थ हो गया है। यहाँ याद करें कि स्वयं संविधान निर्माता डॉ. अंबेदकर ने भारतीय संविधान को सेक्यूलर नहीं माना था क्योंकि "यह विभिन्न समुदायों के बीच भेद–भाव करती है"।

उपर्युक्त परिभाषाओं में सबसे विचित्र बात यही है कि इन में से किसी को वैधानिक रूप नहीं दिया गया। कांग्रेस ने 1976 में इमरजेंसी के दौरान 42वाँ संशोधन करके, संविधान की प्रस्तावना में 'सेक्यूलर' शब्द जबरन जोड़ दिया। किंतु बिना कोई अर्थ दिए। जबरन इस रूप में, कि तब विपक्ष जेल में डाला हुआ था, और प्रेस पर अंकुश था। बाद आई जनता सरकार ने 1978 में 45वें संशोधन द्वारा कांग्रेस वाली परिभाषा को ही वैधानिक रूप देने की कोशिश की। लोक सभा में यह पारित भी हो गया। पर राज्य सभा में कांगेस ने ही इसे पारित नहीं होने दिया!

यह इस का पक्का प्रमाण था कि संविधान की प्रस्तावना में 'सेक्यूलर' शब्द गर्हित उद्देश्य से जोड़ा गया था। इसीलिए उसे जान–बूझ कर अपरिभाषित रखा गया। ताकि जब जैसे चाहे, दुरुपयोग किया जाए। यह अन्याय सुप्रीम कोर्ट ने भी दूर नहीं किया। उलटे 1992 में 'एस. आर. बोम्मई बनाम भारत सरकार' वाले निर्णय में इसने लिख डाला कि सेक्यूलरिज्म लचीला शब्द है, जिस का अपरिभाषित रहना ही ठीक है। जबकि ऐसा कहना कानून की धारणा के ही विरुद्ध है। कानून का अर्थ ही निश्चित रूप से लागू होने वाला आदेश होता है। पर जो स्पष्ट ही नहीं, वह मनमानी के सिवा और लागू कैसे होता? खविस्तार से जानने के लिए देखें, इस लेखक की पुस्तक 'भारत में प्रचलित सेक्यूलरवाद', अक्षय प्रकाशन, दिल्ली,

दुर्भाग्य से राष्ट्रीय चेतना वाले लोगों ने न तो 1978 न बाद में कभी इस गड़बड़ी के विरुद्ध कोई आंदोलन चलाना आवश्यक समझा। वे अपरिभाषित सेक्यूलरिज्म के दूरगामी घातक परिणामों को समझने में विफल रहे। जिस भाजपा को 'स्यूडो–सेक्यूलरिज्म' के विरुद्ध लंबे समय से शिकायत थी, उसने भी अपने शासन काल (1998–2004) में सेक्यूलरिज्म को परिभाषित करने पर कोई विचार तक नहीं किया। उल्टे वह 'हम भी सेक्यूलर' की होड़ में लग गई। अन्यथा उसने इसे कानूनी रूप से परिभाषित करना–करवाना अपना प्रधान कर्तव्य समझा होता। पर हिंदू समुदाय के गले में फंदे की तरह पड़े इस अस्पष्ट सेक्यूलरिज्म को परिभाषित करने की जरूरत पर उनके हाथ–पैर भी ठंढे हो गए।

यह चिर–परिचित हिंदू भीरुता थी। इसी कारण स्यूडो–सेक्यूलरिज्म के खिलाफ रोने–धोने वाले नेताओं को इस 'स्यूडो' को 'रीयल' रूप देने का साहस न हुआ। इसी का प्रमाण था कि संविधान कार्यचालन की समीक्षा का आयोग तो बनाया गया, किंतु उस ने भी इस पर कोई अनुशंसा नहीं दी। यह भी हिंदू महानुभावों पर लाक्षणिक टिप्पणी ही है कि इस आयोग के अध्यक्ष वही न्यायमूर्ति एम. एन. वेंकटचलैया थे। स्पष्टतः उन्होंने भी सेक्यूलरिज्म को 'बहुसंख्या के विरुद्ध प्रयोग किए जाने' के चलन को रोकने के लिए कुछ करना आवश्यक नहीं समझा!

यह मानना गलत है कि सेक्यूलरिज्म को परिभाषित करने का विधेयक संसद से पास नहीं होता या नहीं होगा। ऐसा विधेयक आने पर, उस का विरोध करने पर भी जो राष्ट्र–व्यापी बहस होगी, उसी में उस की बड़ी सफलता निश्चित है। भारतीय जनता दृ हिंदू, मुस्लिम दोनों दृ ही यह देखेगी कि अपरिभाषित सेक्यूलरिज्म राजनीतिक दुष्टताओं की जड़ है। जिस चीज को संविधान और शासन का आधारभूत सिद्धांत कहा जाता है, उसे परिभाषित होने से किस आधार पर रोका जाएगा? एक अर्थ पसंद नहीं तो दूसरा सही, पर कोई पक्का, वैधानिक अर्थ तो होना ही चाहिए। इस से हीला–हवाला करने पर लोगों को समझने में कठिनाई नहीं होगी, कि सेक्यूलरिज्म को अपरिभाषित रखना विभिन्न समुदायों के बीच दूरी को बनाए रखने का औजार है। इसलिए यदि सेक्यूलरिज्म को परिभाषित करने का गंभीर प्रयास हो, तो इस का कोई न कोई कानूनी अर्थ तय करवाना बिलकुल संभव है। यदि प्रयास शुरू में विफल भी हो तब भी उस पर राष्ट्रीय बहस भारतीय समाज को जागृत करेगा।

सार्थक जीवन – श्री बाल आपटे राज्यसभा से निवृत्त

ज्यों की त्यों धर दीन्ही चदरिया

• आशुतोष

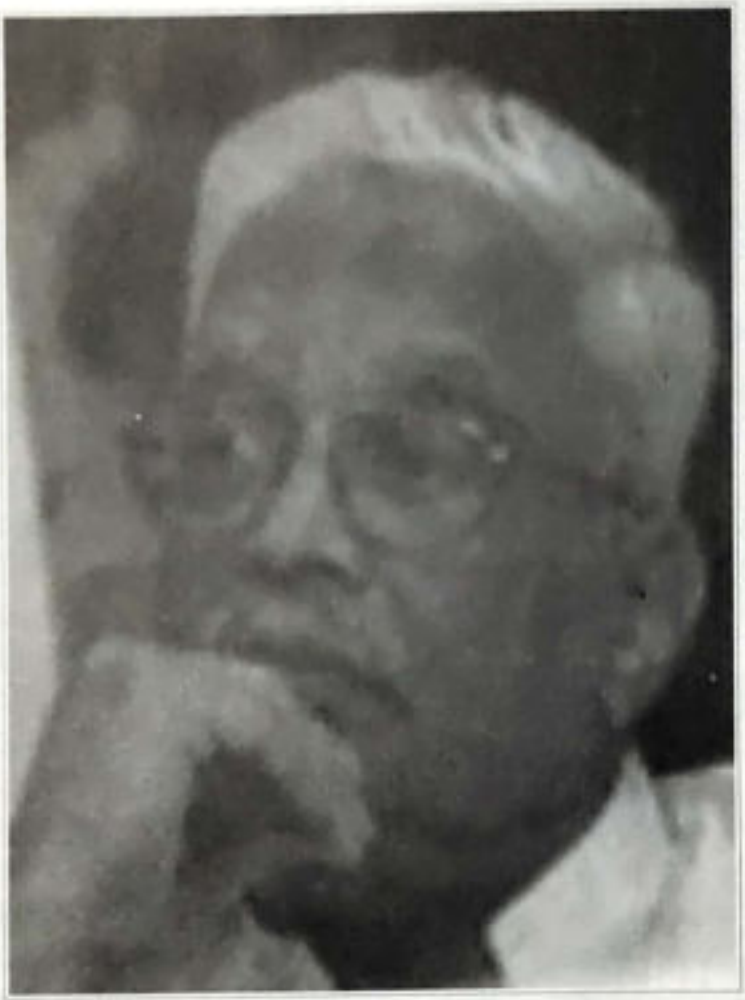

आर. टी. आई. एक्टीविस्ट हर कुछ महीनों बाद यह जानने के लिये आवेदन करते हैं कि नयी दिल्ली के कितने भवनों पर अवैध कब्जा है, कितने सांसदों ने अपने आवास पर चुनाव हारने के बाद भी कब्जा कर रखा है, अथवा कितने सांसदों पर कितनी देनदारी बकाया है। संसद से कार्यकाल पूरा होने के बाद आवास खाली करने के लिये सांसदों को एक माह का समय दिया जाता है लेकिन अधिकांश सांसद लम्बे समय तक उस पर कब्जा किये रहते हैं।

इनमें ही अपवाद के रूप में उदाहरण है राज्यसभा सांसद श्री बलवंत परशुराम आपटे का जिनका कार्यकाल गत 2 अप्रैल को पूरा हुआ। 3 अप्रैल को उनके कुछ इष्ट–मित्रों ने उनके सम्मान में शुभेच्छा कार्यक्रम आयोजित किया। 4 अप्रेल को वे सरकारी आवास खाली कर अपने सभी देय निपटा कर अपने गृहनगर मुंबई के लिये रवाना हो गये। कबीर की पंक्ति स्मरण आती है : दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीन्ही चदरिया।

महाराष्ट्र से दो सत्रों तक लगातार निर्वाचित होकर राज्यसभा में भाजपा का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री आपटे चार दशकों तक अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद से जुड़े रहे। वर्ष 2000 ई में जब वे पहली बार चुन कर आये, साथ ही भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष बनाये गये तो मुझे उनके सहायक के रूप में कुछ समय उनके साथ काम करने का अवसर मिला। राजनीति न उनके स्वभाव में थी और न मेरे। जीवन का अनुभव उनके पास बहुत अधिक था और मैं दुनियादारी के मामले में भी शून्य।

दोनों को ही हर दिन एक न एक नया अनुभव मिलता था। ऐसा ही एक रोचक अनुभव आज मुझे स्मरण आता है। ऑफिस के फोन की घंटी बजी। मेरे 'हलो' के जवाब में दूसरी ओर से एक महिला स्वर सुनाई दिया। मैंने उनका परिचय पूछा तो उन्होंने पिछले हफ्ते हुई मुलाकात की याद दिलाई और इतनी जल्दी भूल जाने का उलाहना दिया। उनके स्वर में अतिरिक्त मिठास थी।

आपटे जी के साथ काम करते हुए मुझे कुछ ही दिन हुए थे किन्तु मिलने आने वालों के स्वर की मधुरता में छिपे स्वार्थ को मैं पहचानने लगा था। दूसरी ओर से फोन करने वाली कोई बेगम साहिबा थीं जो आपटे जी से मिलना चाहती थीं।

तय समय पर वे आयी। नफासत उनकी हर अदा से झलकती थी। धीरे–धीरे वे मुद्दे पर आयीं। उनके

देवर बड़े ठेकेदार थे और वे मुंबई में जरूरी सार्वजनिक निर्माण कार्यों की एक सूची साथ लाये थे। उन्होंने बताया कि यह काम सांसद निधि से कराने से उन्हें सार्वजनिक प्रशंसा मिलेगी, साथ ही ठेके की रकम में से हिस्सा भी।

आपटे जी ने उन्हें सांसद निधि की प्रक्रिया समझाने का प्रयास किया। उन्होंने बताया कि सांसद केवल किसी काम की अनुशंसा कर सकता है। इसके लिये नोडल अधिकारी अपनी प्रक्रिया पूरी करेगा, फिर निविदायें आमंत्रित की जायेंगी, उन्हें खोला जायेगा, उसमें से जो ठीक पायी जायेगी, उसे ठेका मिलेगा। यह ठेका किसको मिलेगा यह बिना निविदा खुले कैसे तय हो सकता है। बेगम साहिबा ने समझाया कि आप अभी राजनीति में नये हैं पर हमें इन सब कामों का पुराना तजुर्बा है। आप केवल अपने नोडल अधिकारी को अनुशंसा कर दें, शेष सब हम संभाल लेंगे।

आपटे जी अभी भी यह मानने को तैयार नहीं थे कि उनका नोडल अधिकारी उनके बताये काम में किसी प्रकार की घूसखोरी का साहस कर सकता है। उन्होंने कहा कि यह संभव ही नहीं है। किन्तु बेगम का देवर लगभग चुनौती देने के अंदाज में बोला दृ काम होगा कि नहीं होगा इसकी चिंता करने की जरूरत आपको नहीं है। आप अपने हिस्से की बात कीजिये।

जो लोग तब के आपटे जी को जानते थे वे जानते हैं कि इतना तो उनके फट पड़ने के लिये काफी था। किन्तु मैं देख रहा था कि आपटे जी अपने क्रोध को प्रयासपूर्वक दबा रहे थे। शायद सामने एक महिला होने के कारण वे अपने आप को रोक रहे थे। कुछ क्षण रुक कर वे बेहद ठंडे शब्दों में बोले, आप जा सकते हैं, और आज के बाद दोबारा फोन करने की भी कोशिश मत करना।

उनके जाने के बाद भी सामान्य होने में उन्हें काफी समय लगा। बाद में खाने की मेज पर चर्चा में मैंने कहा कि लोग सभी को भ्रष्ट मानते हैं और समझते हैं कि वे पैसे से सब कुछ खरीद सकते हैं। आपटे जी ने विनोद में कहा : अच्छा हुआ कि वह आज आये। अगर पांच साल पहले आकर उन्होंने यह बात कही होती तो शायद मैंने उन्हें चले जाने के लिये कहने के बजाय छठे माले से स्वयं धक्का दिया होता।

जो लोग आपटे जी को जानते हैं वे यह भी जानते हैं कि उन्हें मूल्यों से डिगा पाना कठिन नहीं असंभव है। जीवन के उतार–चढ़ाव में उन्होंने हर कठिनाई को अपनी दृढ़ता से पार किया है। सरल इतने, कि बड़ी से बड़ी गलती को मानवीय भूल मान कर क्षमा करने में पल भर न लगायें। कठोर इतने कि सिद्धान्त के विरुद्ध किसी भी बात को मनवा लेना असंभव, चाहे वह बात कितना भी बड़ा व्यक्ति कह रहा हो।

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद को गढ़ने वाले शिल्पियों में श्री आपटे हैं। संगठन का नेतृत्व किया, यह कहने से शायद बात पूरी नहीं होती। यशवंतराव केलकर हों या बाल आपटे जी, उन्होंने संगठन को जिया है। कार्यकर्ता से जिन गुणों व मूल्यों की अपेक्षा की, व्यक्तिगत जीवन में उन्हें उतारा। यशवंतराव जी को तो दूर से ही देखा, साथ काम करने का अवसर नहीं मिला। आपटे जी को जब तक संगठन के अधिकारी के रूप में देखा, वे कठोर और अनुशासनप्रिय अधिकारी की भूमिका में ही दिखते थे। किन्तु साथ काम करते हुए अनुभव हुआ कि कार्यकर्ता के लिये वात्सल्य भी अपार है। संभवतः यह भूमिका यशवंतराव के जाने के बाद अधिक बलवती हुई ताकि संगठन के सामान्य कार्यकर्ता को रिक्तता का अनुभव न हो सके।

आपटे जी की आत्मीयता के साथ ही उनकी सहधर्मिणी निर्मला ताई का सहयोग भी अकल्पनीय है। वस्तुतः वह निर्मला ताई ही हैं जिन्होंने आपटे जी के उग्र स्वभाव (आपटे जी कभी–कभी दुर्वासा की भूमिका में होते हैं, हालांकि यह क्रोध क्षणिक ही होता है, लेकिन उसका सामना करना अत्यंत कठिन है) को भी संभाला है, साथ ही परिवार की भी चिन्ता की है। आपटे जी के परिवार में यूं तो तीन ही लोग हैं लेकिन उनके विस्तृत परिवार में अभाविप और संघ के सैकड़ों–हजारों कार्यकर्ता शामिल हैं।

निर्मला ताई स्वयं विद्यार्थी परिषद की कार्यकर्ता रहीं। उनकी पुत्री डॉ जाह्नवी मेडिकल की

पढ़ाई पूरी करने के बाद अभाविप की दो वर्ष तक पूर्णकालिक रही। संगठन को परिवार के भीतर भी स्थान दिलाने का काम प्रो. यशवंतराव केलकर ने किया। बाल आपटे जी के परिवार ने इस श्रृंखला को आगे बढ़ाया।

अपने प्रति कठोर, दूसरों के प्रति नरम। सभी आवश्यक, अनिवार्य कोई नहीं। हर धातु पिघलती है, अपेक्षित ऊष्मा चाहिये। व्यक्ति निर्माण से राष्ट्रीय पुनर्निर्माण। कार्यकर्ता विकास और कार्यपद्धति का आग्रह। अभाविप की जिस टोली के सामूहिक चिंतन से यह तत्वज्ञान प्रकट हुआ था, उसकी प्रेरणा थे यशवंतराव केलकर। भगीरथ बन उसे आगे की पीढ़ी के कार्यकर्ताओं तक पहुंचाने का सफल प्रयत्न किया आपटे जी ने।

इसके लिये कार्यकर्ताओं को उपदेश देना नहीं पड़ा। उनके अपने आचरण से कार्यकर्ताओं ने स्वयं संदेश ग्रहण कर लिया। यशवंतराव का आचरण स्वयं साक्षी था तो आपटे जी परीक्षा से भी गुजरे। यह परीक्षा थी राजनीति की रपटीली राहों की यात्रा। राज्यसभा के दो सत्र, अर्थात बारह वर्ष का समय। जिस उदाहरण से बात शुरू हुई, ऐसे उदाहरण प्रतिदिन उपस्थित। जहां शत्रु ही नहीं, मित्र भी चाहते हैं कि आप स्खलित हों। जहां आपका ईमानदार रहना उनमें से अनेक के लिये असुविधाजनक है और आपका गिरना उनके लिये संतोषप्रद।

मूल्यों पर दृढ़ रहते हुए जीना और बिना समझौता किये कीचड़ में कमल की तरह सार्थक जीवन जीने का उदाहरण श्री बलवंत आपटे ने प्रस्तुत किया है। जब सब ओर पतन के आलेख लिखे जा रहे हों, तब अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद का एक कार्यकर्ता राजनैतिक जीवन में प्रकाश स्तंभ के रूप में खड़ा रहे, यह संगठन के लिये गौरव का विषय है।

राष्ट्रीय छात्रशक्ति से श्री आपटे का संबंध दशकों पुराना है। जब–जब भी पत्रिका का प्रकाशन हुआ, आपटे जी का मार्गदर्शन सदैव मिला। प्रारंभिक वर्षों में तो वे 'दिशा–दर्शन' नाम से नियमित स्तंभ लिखते रहे।

राज्यसभा में आना अथवा कार्यकाल पूरा कर जाना, यह कोई नयी अथवा विशेष बात नहीं है। विशेष है उनका कृतित्व। उन्हें जब भाजपा द्वारा राज्यसभा में भेजे जाने का प्रस्ताव दिया गया तो उन्होंने इसे स्वीकार करने में पर्याप्त समय लिया और अंततः राज्यसभा में जाना अथवा नहीं, यह निर्णय संगठन पर छोड़ दिया। हां कहने में समय लेने वाले आपटे जी ने पुनः राज्यसभा में भेजे जाने का कोई आग्रह नहीं दिखाया।

छात्र संगठन को दिशा देने के बाद राजनैतिक क्षेत्र में उनके जीवन की एक तरह से दूसरी पारी थी। दोनों ही पारियों को उन्होंने सफलता के साथ–साथ सार्थकता से पूरा किया। जीवन की कृतार्थता का जो आनंद आपटे जी इस अवसर पर कर रहे होंगे, राष्ट्रीय छात्रशक्ति और अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद उसमें सहभागी है। उनका मार्गदर्शन हमें आगे भी मिलता रहेगा, इस विश्वास के साथ ही राष्ट्रीय छात्रशक्ति बाल आपटे जी के स्वस्थ एवं दीर्घायु जीवन की शुभकामना प्रेषित करती है।

प्रिय मित्रों,

शिक्षा क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका के रूप में 'राष्ट्रीय छात्रशक्ति' का अप्रैल अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इसमें विभिन्न सामसमायिक घटनाकमों तथा भ्रष्टाचार से संबंधित कई महत्वपूर्ण आलेखों एवं खबरों का संकलन किया गया है। आशा है कि यह अंक आपकी आवश्यकताओं के अनुरूप उपादेय साबित होगा।

'राष्ट्रीय छात्रशक्ति' से संबंधित अपने सुझाव और विचार हमें नीचे दिए गए संपादकीय कार्यालय के पत्ते अथवा ई – मेल पर अवश्य भेजें:–

''छात्रशक्ति भवन''
690 भूतल, गली नं. 21
फेज रोड, करोलबाग
नई दिल्ली - 110005
फोन : 011-43098248
ई-मेल : chhatrashakti.abvp@gmail.com
ब्लॉग : chhatrashaktiabvp.blogspot.com
वेबसाईट : www.abvp.org

सेवाएं पाने का हक मिला, सुशासन का नया पृष्ठ खुला

मध्यप्रदेश लोक सेवा गारंटी कानून

मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान ने प्रदेश में सुशासन को नया आधार दिया है। अब लोग नागरिक सेवाएं, तय समय सीमा में पाते हैं।

अब नियत समय में मिलती हैं 52 सेवाएँ।

- ✓ 3 दिन में आय प्रमाण-पत्र
- ✓ 15 दिन में विकलांगता प्रमाण-पत्र
- ✓ 10 दिन में राज्य बीमारी सहायता प्रकरण की स्वीकृति
- ✓ 7 दिन में दीनदयाल अंत्योदय उपचार योजना कार्ड
- ✓ 30 दिन में रासायनिक उर्वरक विक्रय का लायसेंस
- ✓ 30 दिन में कीटनाशक विक्रय का लायसेंस
- ✓ 10 दिन में लर्निंग ड्रायविंग लाइसेंस
- ✓ 30 दिन में बीपीएल सर्वे सूची में नाम जोड़ना
- ✓ 30 दिन में लाड़ली लक्ष्मी योजना का लाभ

करीब एक करोड़ लोगों को मिला है इस कानून का लाभ।

नागरिक अधिकारों की सुरक्षा मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसंपर्क द्वारा जारी

RNI No. 32464/78

Con. No. - DL(N)/249/10-12

डॉ. भीमराव अंबेडकर जयंती पर विशेष
(14 अप्रैल 2012)